Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

बोधि पुस्तक पर्व

• द्वितीय बन्ध

पाटी

चित्रा मुद्गल

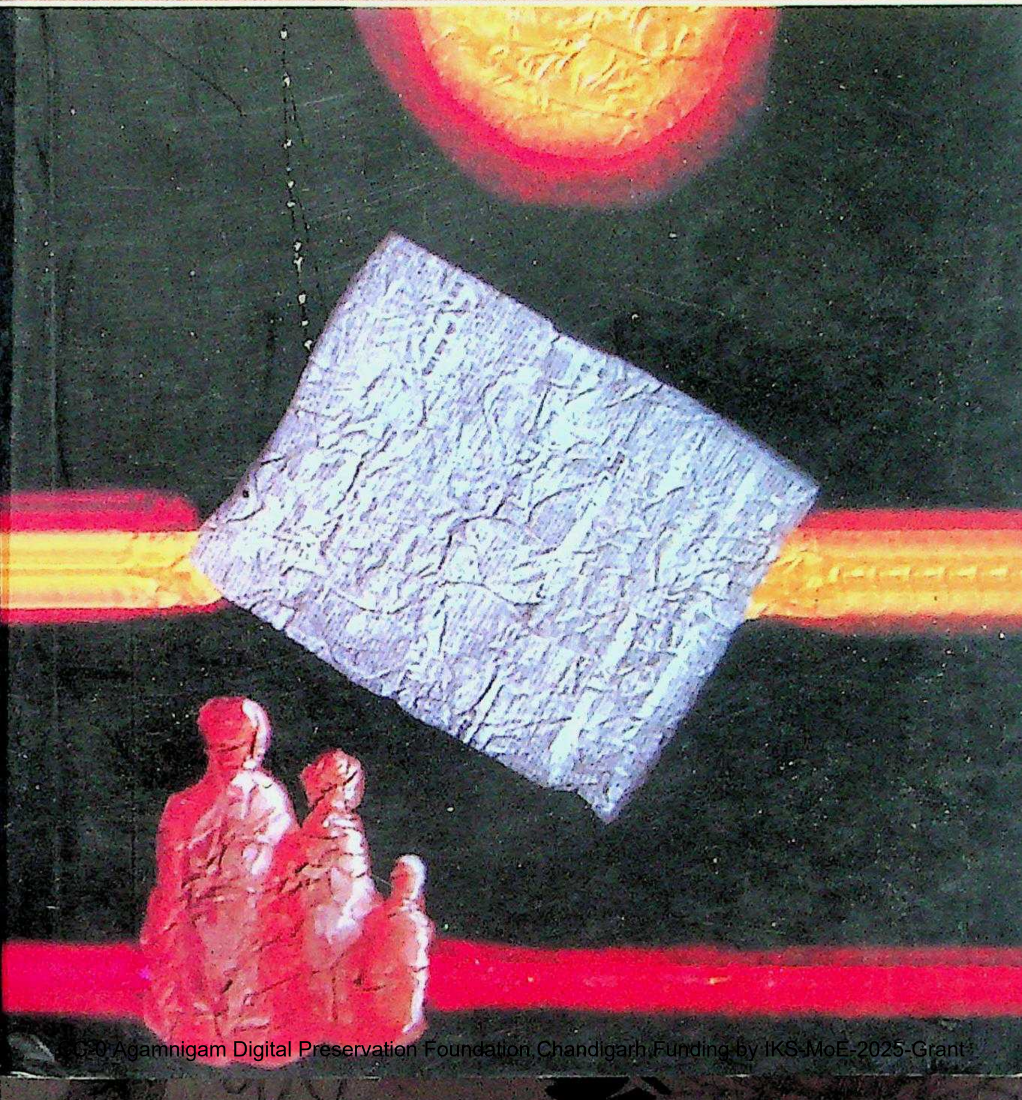

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation Chandigarh Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

पाटी

(लेख)

अग्निशेखर और क्षमा कौल
द्वारा यह
पुस्तक सप्रेम भेंट

चित्रा मुद्गल

G.M. College of Education
Raipur, Bantalab
Jammu.
Acc No. 47870
Dated 12-12-2023

बोधि
समर्पित जन-जन के लिए

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

बोधि पुस्तक पर्व

बोधि प्रकाशन सुधी पाठकों के लिए श्रेष्ठ साहित्यिक पुस्तकें उचित मूल्य पर प्रकाशित करता है। पुस्तक-पर्व योजना के तहत चुनिंदा साहित्यकारों की पुस्तकें पेपरबैक में उपलब्ध कराई जा रही हैं। दस पुस्तकों के एक सैट की कुल कीमत मात्र 100 रुपये है। इस योजना में कुल दस सैट प्रस्तावित हैं।

प्रथम सैट में- 1. जहाँ एक उजाले की रेखा खिंची है : नंद चतुर्वेदी, 2. भीगे डैनों वाला गरुण : विजेन्द्र, 3. आकाश की जात बता भइया : चन्द्रकान्त देवताले, 4. प्रपंच-सार-सुबोधनी : हेमंत शेष, 5. कुछ इधर की कुछ उधर की : हेतु भारद्वाज, 6. जब समय दोहरा रहा हो इतिहास : नासिरा शर्मा, 7. तारीख़ की खंजड़ी : सत्यनारायण, 8. आठ कहानियां : महीप सिंह, 9. गुडनाइट इण्डिया : प्रमोद कुमार शर्मा, 10. घग्घर नदी के टापू : सुरेन्द्र सुन्दरम्।

द्वितीय बन्ध (सैट) में प्रकाशित पुस्तकें हैं-

करतूते मरदां (कहानी)	:	मन्नू भंडारी
एक औरत : तीन बटा चार (कहानी)	:	सुधा अरोड़ा
पाटी (लेख)	:	चित्रा मुद्गल
पढ़ते, लिखते, रचते (विविध)	:	ममता कालिया
कही अनकही (स्त्री-विमर्श)	:	कमल कुमार
केयर ऑफ स्वात घाटी (कहानी)	:	मनीषा कुलश्रेष्ठ
तनिक ठहरो समुद्र (कविता)	:	रंजना श्रीवास्तव
सदी के पार (कविता)	:	पद्मजा शर्मा
विमर्श और विस्तार (आलोचना)	:	प्रमिला के पी
खिरनी की छांह (लम्बी कहानी)	:	प्रीता भार्गव

© चित्रा मुद्गल

प्रथम संस्करण : जून, 2011
कम्प्यूटर ग्राफिक्स : बनवारी कुमावत 'राज'
आवरण कोलाज : सुभाष केकरे

बोधि प्रकाशन, जयपुर के लिए तरु ऑफसेट, जयपुर से मुद्रित एवं कार्यालय बोधि प्रकाशन, एफ-77 सेक्टर 9, रोड नं. 11, करतारपुरा इंडस्ट्रियल एरिया, बाईस गोदाम, जयपुर-302006 से प्रकाशित।
दूरभाष : 0141-2503989, 98290-18087, ई-मेल : bodhipustakparv@gmail.com

₹ 10/-

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

सही के लिए
जिसकी सन्नद्धता प्रेरित करती है
कर्मठ मित्र पवन सुराणा के लिए

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

अग्निशेखर और क्षमा कौल
द्वारा यह
पुस्तक सप्रेम भेंट

अनुक्रम

पहली मुहब्बत सी पहली किताब-किस्सा-ए-गुलफाम	7
उनकी मौजूदगी में	14
अपनी वापसी की वापसी	21
कहानियां लिखती कहानियां	30
द्वंद्व की चौखटें और हम!	40
पहाड़ा रटती उम्र और अम्मा	43
अक्सर जीवित पात्र कल्पना को पंख देते हैं	46
मेरी दुनिया, मेरा लेखन	49
दो घरों का एक ही चूल्हा	66

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

पहली मुहब्बत सी पहली किताब-किस्साए गुलफ़ाम

बात इस वक़्त मैं आपसे अपनी पहली किताब के संदर्भ में करना चाहती हूं...समझ रहे हैं न आप!

लेकिन बात शुरू करने से पहले में आपको उस जुनून से मिलवाना चाहती हूं, जो किताबों को लेकर जब भी मेरे सिर पर चढ़ता है, न चाहते हुए भी जबरन मुझे किसी चहेती दुकान के सामने ले जाकर खड़ा कर देता है। यकीन कीजिए कुछ क्षण तो वह मुझे दुकान की देहरी पर ही ठिठकाये रहता है कि लौट चलिए। अभी पिछले महीने ही तो आपने पांच नई किताबें खरीदी हैं और अब तलक उनकी भूमिका को छोड़कर आगे के पन्ने तक नहीं पलटे हैं! एकाध और किताब उनकी बगल में ठूंस उन्हें क्यों नाराज करेंगी? मगर मैं जानती हूं कि जुनून की हाथी दांत-सी यह सदाशयता मात्र दिखावटी भर है। जताने के लिए कि देखिए, दुकान में प्रवेश करना न करना आपकी मर्जी पर निर्भर करता है। बाद में मुझे दोष मत दीजिएगा। उसे दोषमुक्त करते हुए मैं हठी-सी दुकान में दाखिल हो जाती हूं। चारों ओर किताबों से घिरी चौंधियायी सी कुछ देर कुछेक किताबों के समक्ष ठिठक कर मैं गतिशील होती हूं। किताबों की परिक्रमा करते हुए, उन्हें हाथों में लेकर सहलाते छूते उनके शीर्षकों से लेकर फ्लैप पर दी गई टिप्पणियों को पढ़ते हुए, मन ही मन पर्स के भीतरी कोनों का टटोलते हिसाब भी लगाती रहती हूं कि जिन पुस्तकों को अपने अध्ययन कक्ष की अमानत बना लेने का सपना काफी पहले से जेहन में संजोए हुए हूं, उसकी कीमत चुकाने लायक पैसे भी हैं मेरे पास या नहीं? दो ही चीजों के दाम बढ़े हैं इधर तेजी से। सोने के और किताबों के। शेष महंगाई की तो बात करना ही फिजूल है। फिर दिक्कत एक और भी है। किताब के साथ घर लौटने के लिए किराये के पैसे भी तो खीसे में होने चाहिए! खान मार्केट से घर दस-ग्यारह किलोमीटर से कम नहीं होगा। छूट का प्रतिशत बढ़वाने की कोशिश होगी। कोशिश कितनी कामयाब होगी, कैसे कहा जा सकता है। जानती हूं छूट के प्रतिशत पर ही

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

निर्भर करेगा कि किताब को गोद में उठाए हुए इतराते हुए थ्री व्हीलर से घर जाया जा सकेगा या फिर कुछ दूर पैदल जाकर वहां से गंतव्य के लिए डीटीसी की बस पकड़नी होगी या फिर हत्यारिन ब्लू लाइन?

कुछ भी हो, यह मुमकिन नहीं कि मैं बिना पुस्तक खरीदे हुए अकेले घर लौट जाऊं। पुस्तक की दुकान से अब तक खाली हाथ लौटना संभव नहीं हो पाया। आश्वस्त हूं, खाली हाथ लौटना नहीं होगा।

पुस्तक विक्रेताओं के प्रति मेरा अनुभव अधिकांशत: सकारात्मक ही रहा है, बल्कि एकाध अपवाद को छोड़कर वे मुझे गहरे पुस्तक प्रेमी ही नजर आए हैं। साथ ही असफल लेखक।

मेरी धारणा है और अक्सर वह सही ही साबित होती है कि पुस्तक प्रेमी न होते पुस्तक विक्रेता तो निश्चय ही खासी बड़ी और मौके की दुकानों पर वे पंसारी की दुकानें खोलकर बैठे हुए होते और बेहिसाब मुनाफा कमा रहे होते।

ऐसे पुस्तक विक्रेता से जब कोई अन्य पुस्तक प्रेमी टकराता है तो पुस्तक विक्रेता व्यावसायिकता के मुल्लमे को परे धकेल अतिरिक्त संवेदनशील हो पुस्तक प्रेमी को उसकी मनचाही छूट दे देता है। मुझे भी मनचाही किताब मिल जाती है वह भी अक्सर आधी कीमत पर।

अब आप अनुमान लगाने के लिए स्वतंत्र हैं। अपनी पहली किताब के प्रकाशन की विह्वल कर देने वाली खुशी को बांटने से पहले, क्यों मैं आपसे जुनून की हदें उलांघते स्वयं के पुस्तक प्रेम को बांटने के लिए आतुर हो आयी हूं।

संयोग से वही पुस्तक प्रेमी यदि कहानियां लिखने लगे और उसकी कहानियों को उदारमना पाठकगण प्रशंसा से नवाजते उससे और बेहतर रचनात्मक अभिव्यक्ति की उम्मीद जताते उसकी हौसला आफजाई करते उसे पत्र लिखने लगें हों और उससे जानना चाह रहे हों कि उन्हें उसके कहानी संग्रह की प्रतीक्षा है। कब आ रहा है उसका कथा-संग्रह तो सोचिए, उसकी पहली किताब आ जाने पर उस लेखक को कैसा महसूस हुआ होगा।

नहीं सोचा होगा उसने? कि क्या यह संभव है कि विशाल पाठकवर्ग में से कोई उसका भी ऐसा ही पाठक हो जो उसकी पुस्तक को पाने और पढ़ने के लिए जुनून की हदें फलांगता किताबों की दुकान तक जा पहुंचे? उसकी किताब ढूंढ़े? उसे खरीदे! मगन कनिया में उठाए उसे घर लौटे!

लेखक के लिए उसकी पहली किताब उसके लिए क्या मायने रखती है, इसका अंदाजा उस खुशी से लगाया जा सकता है कि पहिलौटी के बच्चे की भांति

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

बच्चे को प्रसवित करते हुए कहीं मां, स्वयं को स्वयं से जन्मते हुए महसूस करती है...।

अपने प्रथम कथा संकलन 'ज़हर ठहरा हुआ', जिसका प्रथम प्रकाशन 1980 में 'अनन्य प्रकाशन' से हुआ था, के प्रकाशित होते ही मैंने कुछ ऐसा ही महसूस किया था। किसी चिर-प्रतीक्षित की प्राप्ति-सा।

मुंबई में (तब बंबई) मेरे अनेक हिंदी, गुजराती और मराठी साहित्यिक आत्मीयों को इस बात से आश्चर्य होता था। लिख तो मैं 1964 के पहले से रही हूं और हिन्दी की लगभग सभी बड़ी और महत्त्वपूर्ण साहित्यिक लघु पत्र-पत्रिकाओं में मेरी कहानियां जब-तब प्रकाशित होती रहती हैं, लेकिन क्यों मैं अपनी कहानियों के पुस्तकाकार प्रकाशन के प्रति इतनी उदासीन हूं? यहां तक कि मेरे बाद लेखन जगत में आए लेखकों के कई कथा संकलन प्रकाशित हो चर्चित हो रहे हैं। यह उदासीनता उचित नहीं। कथा संग्रह के प्रकाशन कें संदर्भ में मुझे दिल्ली के जाने-माने प्रकाशकों से अविलंब बात करनी चाहिए। यहां तक कि डॉ. धर्मवीर भारती ने कहा था, ''ढील छोड़ अपना पहला कथा संग्रह फटाफट तैयार कर लो चित्रा! भारतीय ज्ञानपीठ में अपने लक्ष्मीचंद जैन हैं। कहो तो उनसे बात चलाऊं?''

यही सुझाव मुंबई से 1979 में 'सारिका' के दिल्ली स्थानान्तरण के साथ दिल्ली आने के लिए मजबूर हुए अवध ने भी दिया था। ''*सारिका* के चलते यहां कई बड़े प्रकाशकों से मेरे अच्छे संबंध कायम हुए हैं। तुम कहो तो मैं तुम्हारे कथा संग्रह के प्रकाशन की बात उनमें से किसी से भी कर सकता हूं।''

मैंने अवध से कहा था, ''अपनी रचनाओं के प्रकाशन के विषय पर तुम इतने निरासक्त क्यों हो?''

अवध का उत्तर था, ''कोई मुझसे संग्रह मांगेगा तो जरूर दे दूंगा उसे।''

मेरा जवाब था, ''अपने कथा संग्रह के प्रकाशन के विषय में मैं भी तुम्हारी तरह ही सोचती हूं अवध!''

इसी बीच, 'सारिका' में नन्दनजी के संपादन में कहानी छपी, 'बावजूद इसके'।

कुछ रचनाएं शगुन की भांति आपके आंचल में आ समाती हैं। दिन बहुरे सौगात दी।

पहली खुशी मिली लखनऊ दूरदर्शन से। उन्होंने अनुबंध-पत्र के साथ सूचित किया था कि दूरदर्शन वाले मेरी कहानी 'बावजूद इसके' पर एक टेलीफिल्म का निर्माण करना चाहते हैं। लौटती डाक से मैं अनुबंध-पत्र हस्ताक्षरित करके भिजवा

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

दूं। प्रेषक सज्जन का नाम स्मरण नहीं आ रहा। अनुबंध की प्रतिलिपि निश्चय ही किसी फाइल में संजोए धरी हुई होगी। दूसरी खुशी थी, चार पंक्तियों का सर्वेश्वर दादा का आह्लाद से भिगोता, दिनमान से आया पत्र, "कहानियां तुम अच्छी लिख लेती हो, मगर 'बावजूद इसके' स्त्री के 'स्व' के संघर्ष को जिस गहनता से प्रश्नांकित करती है, तुम्हें शाबाशी देने का मन कर आया।" 1965 में शादी के बाद दिल्ली पहुंचने पर जिस व्यक्ति से अवध ने 'दिनमान' पहुंचकर सबसे पहले परिचित करवाया था, वह थे सर्वेश्वर दादा। पांव छूने के लिए मेरे झुकते ही दादा ने खबर लेने वाले अंदाज में अवध से कहा, "उम्मीद है अब तुम अपनी जिम्मेदारी समझोगे। सामान कहां है तुम लोगों का? पता लिख लो और सीधा घर पहुंचो। भाभी घर में हैं तुम्हारी। विभा, शुभा भी।"

सर्वेश्वर दादा अपनी तस्वीरों से, जो उनकी कविताओं के साथ अक्सर छपा करती थीं, अलग नहीं लगे थे मुझे।

तस्वीरों ने कभी यह नहीं बताया था कि अपनी कविताओं और नाटकों में, कंठ में दम तोड़ बैठी आवाजों को अपनी आवाज से टेका देने वाले सर्वेश्वर दादा निजी जीवन में मौन से जितना बोलते हैं, शब्दों से कम।

उस समय दादा मॉडल टाउन में रहा करते थे। उनकी ठीक बगल में रहते थे कवि द्वय अजित कुमार और स्नेहमयी चौधरी जी। माडल टाउन उन दिनों अनेक दिग्गज लेखक, पत्रकारों के रहने का ठिकाना, बाड़ा हुआ करता था।

तीसरी खुशी का जिक्र भी सुन लें।

वह था, वह पत्र जो मुझे 'अनन्य प्रकाशन', कटरा हीरालाल, चांदनी चौक, दिल्ली-6 से मिला था। उसके प्रकाशक थे उमेश मेहता। पत्र उमेश मेहता ने 'सारिका' के नए अंक में प्रकाशित मेरी कहानी 'बावजूद इसके' को पढ़कर लिखा था। उन्हें कहानी ने गहरे तक छुआ था। मेरा कहानी संग्रह वे छापना चाहते हैं। कहानी के नीचे लिखे पते पर ही वह मुझे पत्र लिख रहे हैं। प्रकाशन नया है उनका। रॉयल्टी दस प्रतिशत देंगे। साथ ही डेढ़ हजार रुपए अग्रिम। गुलजार साहब से 'बोस्की की कहानियां' के प्रकाशन की अनुमति उन्हें मिल गयी हैं। मेरी अनुमति की उन्हें प्रतीक्षा रहेगी। पटाखों वाली नाचती चरखी की भांति सितारे फूट-फूट कर मेरे चारों ओर थिरकने लगे थे। दो बच्चों वाली मां का कद सिमटकर एक तीसरे बच्चे में तब्दील हो उठा था।

उमगते हुए दिल्ली अवध को फोन किया। प्रकृति के विपरीत उनकी आवाज में कूदती गुर्राहट ने तनिक चौंकाया। नंबर तो दरियागंज वाले टाइम्स ऑफ इंडिया

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

का ही मिलाया है। परेशान-सी मैं इस ओर से ठिठकी। अवध ने ठिठकन भांप ली ''भई नाम तो कभी सुना नहीं अनन्य प्रकाशन का। पंडित चन्द्रिकेशजी से और पूछ लूंगा।'' दिल्ली आने पर लेखक चन्द्रिकोश जी के लारेंस रोड वाले मकान पर ही किराये पर रहे थे अवध। दुखद सूचना यह है कि जब यह लेख लिखा जा रहा है, कथाकार महेश दर्पण ने डूबी आवाज में सूचना दी है कि पंडित चन्द्रिकेश जी की लॉरेंस रोड वाले उनके उसी मकान में रात हत्या हो गई है...

पंडित चन्द्रिकेशजी रजिस्ट्रेशन का दफ्तर हैं क्या! जो नए-पुराने सभी प्रकाशकों को जानते होंगे?

अवध का स्वर तनिक सहज हुआ। अभिभावक का सा धैर्य आ बैठा उनके गले में, जो उनके गंभीर स्वभाव की विशेषता है। नये प्रकाशक के पास नेटवर्क का अभाव रहता है चितुल। पाठकों तक पुस्तक पहुंच नहीं पाती।

मेरा तर्क था, नया यदि अपने लक्ष्य के प्रति संकल्पित हो तो उसे अनुभवी होने में समय नहीं लगता।

फिर तो पत्र मंढ़वा कर मेज पर सजा लो अपनी।

सौतिया डाह से तो दूर-दूर तक मुक्त हैं अवध! यह कौन बोल रहा है? उत्कट खुशी पर घड़े उंडेलता। अगले क्षण संभलना जरूरी लगा। अवध की भावना से मुंह मोड़ना ठीक नहीं। वह मुझे बड़ी लेखिका मानते हैं। रिश्तों के दबाव से अप्रभावी हो...जाहिर है, किसी बड़े प्रकाशक का पत्र आना चाहिए था मेरे पास। नहीं आया तो न सही। पहली किताब मेरी वहीं से छपेगी, जहां से उसके प्रकाशन की मांग हुई है। पुस्तक का भी कोई स्वाभिमान होता है। तय कर लिया। 'अनन्य प्रकाशन' को ही पांडुलिपि भेजी जाएगी।

पुस्तक का शीर्षक उमेशजी 'बावजूद इसके' ही रखना चाहते थे! जाने उनकी सुई वहीं क्यों अटकी हुई थी। मैं रखना चाहती थी अपनी एक अन्य चर्चित कहानी के नाम से। पाठकों ने 'निर्झर' कथा पत्रिका में प्रकाशित 'ज़हर ठहरा हुआ' को बहुत सराहा था। हालांकि बाद में प्रकाशित पुस्तक में कहानी पढ़कर डॉ. धर्मवीर भारती ने उसका शीर्षक बदलवा दिया था। यह भी कहा था, ''अन्य जगह छपी होने के बावजूद इस कहानी का एकमात्र शीर्षक अगर कोई हो सकता है तो वह 'दुलहिन' ही हो सकता है।'' मेरे संशय को निरस्त करते हुए उन्होंने तर्क किया था। अनेक प्रतिष्ठित लेखकों ने अपनी अनेक रचनाओं के शीर्षक कहानी के प्रकाशनोपरांत बदले हैं। यह भी देखा गया है कि शीर्षक बदल देने के बावजूद उन्होंने उसी रचना को पुनः मूल शीर्षक से भी प्रकाशित करवाया है। हालांकि रचनाकारों को स्वार्थवश

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

ऐसे छदम से बचना चाहिए। एक ही रचना के अलग-अलग शीर्षकों से प्रकाशित करने के स्वार्थ से। यदि उसकी अनिवार्यता परिष्करण के संदर्भ में समझी गई है तो निश्चय ही शीर्षक बदल देने में कोई हर्ज़ नहीं।

जाने क्यों, डॉ. साहब से प्रतिवाद नहीं कर पाई थी। हालांकि उनसे कहना चाहती थी कि स्वयं दिए गए शीर्षक से असहमत हो, उसे परिवर्तित करना किसी प्रकार के मलाल भाव से लेखक को ग्रस्त नहीं करता। दूसरों द्वारा खारिज किए गये और उसके द्वारा सुझाये गये शीर्षक को अपनाने की विवशता निश्चय ही लेखक को अपनी सृजनात्मक क्षीणता के बोध से उदास कर देती है। जब भी सोचती हूं इस विषय में तो कुछ तर्क आंखों में आंखें डाल मुझे उनके अन्तर्पाठ में झांकने के लिए विवश कर देते हैं। मेरी लिखी किसी भी रचना का शीर्षक उस रचना में गुंफित दृष्टि को रूपायित करता हुआ होता है, जिस दृष्टि से लेखक ने उसे रचा-गढ़ा है। दृष्टि से ही रचना अपना अलग मुकाम निर्मित करती है। औरों से स्वयं को अलग करती हुई।

जरूरी नहीं, मेरी सोच से असहमत हुआ जा सकता है। संभव है, अन्यों को यह बात मामूली फेर-बदल महसूस हो।

प्रलोभन से उबर मुझे यह उचित नहीं लगा था कि 'निर्झर' में 'ज़हर ठहरा हुआ' नाम से प्रकाशित हो चुकी कहानी 'धर्मयुग' में 'दुलहिन' के नाम से पुनर्प्रकाशित हो। भले ही 'विभोर' लघु पत्रिका रही हो। हालांकि आगे चलकर कई अन्य संग्रहों में वह 'दुलहिन' शीर्षक से ही संकलित होती रही है और शीर्षक मैंने ही बदला था। बाद में यह भी लगने लगा था कि डॉ. साहब का सुझाव स्वीकार मैंने सही ही किया था।

तीस वर्ष हो गए पहली किताब 'ज़हर ठहरा हुआ' को प्रकाशित हुए, लेकिन किताबों के रैक के जिस हिस्से में मेरी सारी किताबें कतार में लगी हुई हैं, जब भी जरूरत-बेजरूरत उनके निकट जाना होता है, यकीन कीजिए 'ज़हर ठहरा हुआ' को निकालकर बड़ी देर तक उसे उलटते-पलटते छूती मयाती रहती हूं। उसके भीतर के पन्ने मलिन हो रहे हैं। समय की थपकी से बुढ़ाते। कहते हैं कि बूढ़ी किताबें अधिक सयानी होती हैं। पकती दुधहड़ी-सी...।

दुधहड़ी में पकते दूध की भांति क्या सयानी होती किताबों में भी रचनाएं-समय की आंच के साथ पकती हैं।

पहली पुस्तक के समर्पण में अवध के सिवा और कौन हो सकता था। सोचती तो यह थी कि मेरी प्रत्येक पुस्तक के समर्पण में सदैव केवल अवध ही होंगे। लेकिन

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

आगे चलकर कुछ और दावेदार इसके हक़दार महसूस हुए। उन कुछ और लोगों ने अलग-अलग रूपों और रिश्तों में अपनत्व उड़ेल मुझे इतना समृद्ध किया कि लगने लगा उनके बिना पांव उन पगडंडियों पर आगे बढ़ ही नहीं सकते थे, जिन पर बबूल के कांटे ही कांटे बिछे हुए थे...।

एक और इच्छा अब तक बकाया है। 'ज़हर ठहरा हुआ' दुबारा अपने उसी मूल रंग-रूप में प्रकाशित हो। आवरण पुस्तक का भले नया हो।

यहां तक कि पुस्तक का समर्पण भी वही हो, कहानियों का क्रमादि भी।

शीर्षक को लेकर दुविधाग्रस्त तो शायद मैं तब भी होऊंगी अपनी आदत के मुताबिक कि क्या 'ज़हर ठहरा हुआ', 'दुलहिन' हो सकेगी...? और अब तो शायद कहानी भी स्वीकार कर चुकी होगी वह शीर्षक जो उसे हिन्दी साहित्य के एक कालजयी कवि ने बड़े खलूस से नवाजा था।

तो...

यह है क़िस्सा कोताह,...पहली मोहब्बत-सी पहली किताब किस्सा-ए-गुलफाम!

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

उनकी मौजूदगी में

जाने क्यों ऐसा लगता है, हमारा अतीत ही हमारा उद्‌गम है। उससे अलग होने का अर्थ है अनाम, और अनाथ होना और मैं अनाथ नहीं होना चाहती हूं, न हूँ ही। मैं आपको मिलवाना चाहती हूं 'लाक्षागृह' से।

यह 'लाक्षागृह' उस 'लाक्षागृह' से सर्वथा अलग है, जिसे कौरवों ने वाणावत में पांडवों को जलाकर मरवाने के लिए निर्मित करवाया था। दरअसल 'लाक्षागृह' इसी उद्देश्य से ही बनवाये जाते हैं। लेकिन कुछ 'लाक्षागृह' किसी और के द्वारा किसी और के लिए नहीं बनवाये जाते। स्वयं अपने लिए अपने द्वारा ही गठे जाते हैं।

क्यों कोई सांकल नहीं खड़कती बंद किवाड़ों पर ताकि हम बंद पटों को स्वयं अपने ही हाथों खोल सकें? जिन्हें शायद हमने ही बंद किया हुआ है। मेरी कुछ कहानियों ने अपने घर के लिए इसी एक शीर्षक को चुना है जो उनमें शामिल एक कहानी का शीर्षक है। मेरे 'लाक्षागृह' की कहानी यों को तो आप स्वयं बूझकर देखिएगा कि क्या है उनका अभीष्ट और क्या है उनका चेत। मैं करूंगी सिर्फ उसके घर के ईंटगोर की बात।

'लाक्षागृह' मेरा दूसरा कथा संकलन है। इसका प्रथम प्रकाशन 1982 में 'पराग प्रकाशन' शाहदरा दिल्ली से हुआ था और उसके प्रकाशक थे श्रीकृष्ण, जिन्होंने स्वयं बच्चों के विषय में काफी कुछ लिखा है। पुस्तक प्रकाशन में उनकी अभिरुचि कैसे हुई, इस विषय में उनके घनिष्ठ मित्र रहे 'धर्मयुग' के सह–सम्पादक द्वय में से एक, सुप्रसिद्ध बाल साहित्यकार रहे योगेन्द्र कुमार 'लल्ला' जी ही बता सकते हैं, यदि उनसे किसी प्रकार इस विषय पर कोई चर्चा हो पाती। सुना है इन दिनों 'लल्ला' जी गाजियाबाद में ही कहीं रह रहे हैं। श्रीकृष्ण का अता–पता अज्ञातावस्था में है। उनके विषय में 'थे' मैं इसलिए लिख रही हूं कि लम्बे अरसे से 'पराग प्रकाशन' से प्रकाशित कोई पुस्तक इधर नजर से नहीं गुजरी। जैसा कि

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

अशोक वाजपेयी ने कहीं लिखा है कि 'यह स्मृति शिथिल समय है'। जाहिर है कि सदैव आगे देखने और भविष्य को लपककर अपनी जेब का सिक्का बना लेने के लिए आतुर लेखक समाज में पीछे छूट गये, उन भले मानसों को कैसे और क्यों याद करे कोई, जबकि जमाना पीछे मुड़कर देखने को बेवकूफी समझता है और बेवजह भावुकता का पर्याय।

अभी कुछ रोज पहले कथाकार से.रा.यात्री जी से अनायास चर्चा चलने पर पता लगा कि 'पराग प्रकाशन' को बहुत पहले श्रीकृष्ण ने दरियागंज के किसी प्रकाशक को बेच दिया था। उन्हें दिमाग में कीड़ों वाली कोई जटिल बीमारी हो गई थी। मजबूरन आर्थिक दिक्कतों के चलते उन्हें अपना प्रकाशन ही नहीं, घर भी बेचना पड़ा। यात्री जी के पास उनके संदर्भ में फिलहाल कोई अन्य सूचना उपलब्ध नहीं है कि वे बता पायें कि प्रकाशक श्रीकृष्ण किस हाल में और कहां हैं।

उन दिनों परिश्रमी और प्रकाशकीय गुणवत्ता के साथ-साथ प्रकाशकीय ईमानदारी की चर्चा जिन मंझोले कद के प्रकाशकों की होती थी, उनके बीच श्रीकृष्ण का नाम काफी सम्मान से लिया जाता था। प्रत्यक्ष उनसे कभी मेरी कोई मुलाकात नहीं हुई, लेकिन उनसे अपरिचित भी नहीं थी मैं। आबिद भाई (सुरती) के गुजराती में प्रकाशित कई लोकप्रिय उपन्यासों को मैंने उनके आग्रह और अपनी जरूरत के चलते दो रुपए प्रति पृष्ठ के हिसाब से हिंदी में अनूदित किया था। हालांकि उनके उन गुलशनन्दाई उपन्यासों के अनुवाद से मुझे वह संतुष्टि अर्जित नहीं हुई थी, जबकि उन्हीं दिनों गुजराती से मैंने बहुत कुछ ऐसी रचनाओं का अनुवाद-कार्य पूरा किया था और लगातार कर भी रही थी, जिसने मुझे गहरी पुनःसृजन की संतुष्टि से पूरा था। वर्षा अड़लजा, सरोज पाठक, ईलाअरब मेहता, कुन्दनिका कापड़िया, पन्नालाल पटेल, यशोदा पलाड़ (कच्छी) आदि उनमें से कुछ ऐसे ही प्रमुख नाम हैं। मुझे तब बहुत अचरज हुआ था जब मराठी के तेजस्वी अनुवादक, साहित्य अकादमी अनुवाद सम्मान से सम्मानित चन्द्रकान्त मोंजाल, जो मेरी भी कहानियों के मराठी अनुवादक हैं, ने चिट्ठी लिखकर मुझे बताया था कि बहुत वर्ष पहले उन्होंने मेरे द्वारा कच्छी से हिन्दी में अनूदित यशोदा पलाड़ की कहानी 'प्रतीक्षा' (यही नाम याद आ रहा है मुझे) का हिन्दी से मराठी में अनुवाद कार्य किया था।

श्रीकृष्ण की तब एक अन्य खासियत ने भी उनकी ओर ध्यानाकृष्ट किया था कि अनुवांदक के रूप में आबिद की पुस्तक पर मेरा नाम नहीं जाएगा। इसे शायद वे सम्मानजनक नहीं समझते रहे होंगे। दूसरा- अनुवाद की पाण्डुलिपि पहुंचते ही

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

वे पारिश्रमिक का चैक लौटती डाक से भिजवा दिया करते थे। एक रोज अनुवाद के एक ऐसे ही चैक के साथ संलग्न उनका आग्रहपूर्ण पत्र मिला कि वे मुझे अपने प्रकाशन परिवार से जोड़ने के इच्छुक हैं। उनका विनम्र निवेदन है कि अपनी कोई नई पाण्डुलिपि प्रकाशन हेतु मैं उन्हें अवश्य दूं। उनकी स्पष्टवादिता ने मन को उत्साहित किया। 'लाक्षागृह' की पाण्डुलिपि मैंने अविलम्ब श्रीकृष्ण को भेज दी। प्रकाशन में लगभग वर्ष भर लग गया, लेकिन जब पुस्तक छपकर आयी तो हाथ में लेते ही 'लाक्षागृह' के कलात्मक आवरण ने मन मोह लिया। चित्रकार कौन है? देखा तो चित्रकार के नाम की जगह किसी अवधेशकुमार का नाम लिखा हुआ पाया। नाम कुछ परिचित-सा प्रतीत हुआ। खयाल आया कि यह कहीं वही चित्रकार अवधेशकुमार तो नहीं हैं जो 'सारिका' के लिए चित्रांकन का कार्य यदा-कदा किया करते हैं? 'लाक्षागृह' के हल्की हल्के रंग वाले आवरण की पृष्ठभूमि में काले रंग की ऊपर उठती लपटों सदृश्य अर्ध और पूर्ण परिधियों के गहरे स्ट्रोक्स से निर्मित हुई रहस्यमयता, संग्रह में संग्रहित रचनाओं की सतह के भीतर के अन्तःसंसार के मनोविज्ञान के संवेद को, बूझने-खोलने की कुंजी अपने आले में संजोए हुए महसूस हुई। आंखें जितनी बार आवरण पर टिकतीं, स्ट्रोक्स भेदने के लिए आमंत्रित करते चुनौती देने लगते। होड़ की बिसात बिछाये हुए। शब्दों और रंगों को प्रतिस्पर्धी-सा सामने ला खड़ा कर।

चित्रकार के सामर्थ्य ने मोहा ही नहीं, बल्कि अपना मुरीद बना लिया। तय किया कि 'पराग प्रकाशन' के पते पर अवधेशकुमार को पत्र लिखूंगी। उन्हें बधाई देते हुए। लेकिन इस पत्र का हश्र भी स्थगित हो गये अन्य बहुत से जरूरी कामों की भांति ठंडे बस्ते की बलि चढ़ गया। लेकिन तभी विस्मय में डालता हुआ एक सांझ घर लौटने पर डाक की भीड़ में अवधेशकुमार का पत्र मिला। कुल जमा छह-सात पंक्तियों का।

"*मामला आगे बढ़ेगा अभी* और *त्रिशंकु* की लेखिका निःसंदेह बड़ी कहानीकार हैं, किंतु उस लेखिका से बड़ी वह स्त्री है, जिसने मुंबई जैसे महानगर से सुरेश उनियाल जैसे मेरे दोस्त को घर की ही नहीं, अम्मा की भी कमी महसूस नहीं होने दी। मुद्गलजी ने बताया कि आपको 'लाक्षागृह' का आवरण बहुत पसंद आया है। धन्यवाद। उस चित्र को मैंने आपकी कहानियों को बिना पढ़े हुए ही बनाया है। दरअसल मैंने अब तक आपकी दो ही कहानियां पढ़ी हैं- 'रविवार' में प्रकाशित 'त्रिशंकु' और 'सारिका' में प्रकाशित 'मामला आगे बढ़ेगा अभी'। मुद्गल जी ने

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

यह भी बताया कि आप मेरे बारे में जानने को उत्सुक हैं। क्या बताऊं, उलझन में हूं। धुंधला गये रंगों–सा श्रीहीन जीवन! गल रहे कैनवास–सी भसकती ज़िंदगी। इसे ज़िंदगी कहा जा सकता है तो मान लीजिए ज़िंदगी। यह भी मान लें कि मैं भी ज़िंदगी जी रहा हूं या ज़िंदगी मुझमें भी थोड़ा–बहुत जीवन सूंघ रही है। यही सच है कि बताने लायक कुछ विशेष नहीं है। कविताएं कम लिखता हूं, पेंट भी कम करता हूं, बोलता भी कम हूं, शराब ज्यादा पीता हूं। गनीमत है, सुरेश जैसे अनेक मित्र मुझसे कन्नी नहीं काटते, डांटते भर रहते हैं...। शादीशुदा कुछ अनुशासित मित्र मुझे घर में देखना–मिलना पसंद नहीं करते। पियक्कड़ घर में शोभा नहीं देता।''

अवधेशकुमार से मुलाकात हुई दिल्ली आने पर।

'टाइम्स ऑफ इण्डिया' से लौटकर एक रोज अवध ने कहा, मृणालजी (पाण्डे) कई दफ़े आग्रह कर चुकी हैं कि किसी दिन चित्रा को 'टाइम्स' लंच पर लेकर आइये! ये वो समय था 1983 का, जब कुछ अरसे 'सारिका' के सम्पादन कार्यभार संभालने के उपरान्त। सन् 1982 में ही अवध को 'सारिका' के सम्पादन का दायित्व सौंप नंदनजी को 'दिनमान' के सम्पादन की जिम्मेदारी सौंप दी गई थी। मृणाल पांडे 'वामा' की सम्पादक होकर आई थीं। सर्वेश्वर जी को (सर्वेश्वरदयाल सक्सेना) 'दिनमान' से हटाकर 'पराग' का सम्पादक बना दिया गया था। उन्हीं दिनों 'पराग' के बाल पाठकों के लिए उनका सुप्रसिद्ध गीत 'इब्नेबतूता, पहन के जूता...' प्रकाशित हुआ था, जिसके मुखड़े का इस्तेमाल गुलज़ार साहब ने इधर हाल में ही रिलीज हुई फिल्म 'इश्किया' में करके सर्वेश्वरदयाल सक्सेना की कविता का मुखड़ा चुराने का आरोप झेला है और मीडिया में उठे विवाद पर सब चुप्पी साधे हुए हैं...।

अवध ने यह भी कहा कि तुम्हें चलना तो पड़ेगा। तुम्हारे जेठ श्री सर्वेश्वरजी भी खफा हैं और लगातार डांट रहे हैं कि हमारी सलोनी–सी लेखिका बहू को तुमने दिल्ली लाकर नज़रबंद क्यों कर दिया है भाई?

'सारिका' के कार्यालय पहुंचते ही रमेश, (बत्तरा) सुरेश, (उनियाल), बलराम, महेश, वीरेन्द्र, बिमलाजी आदि से मिलकर उपजी प्रसन्नता की उमगन को संयमित करने की चेष्टा कर ही रही थी कि तभी अवध के एक कटाक्ष पगे जुमले ने सभी को हंसी में डुबो दिया, ''तुम्हारी अनुपस्थिति में तुम्हारे हितों की संरक्षक तुम्हारे देवरों की इस हनुमान ब्रिगेड में से ये जो बकौल तुम्हारे शांत, सौम्य सुरेश हैं न, मजाल कि इसकी गिद्ध दृष्टि से बचकर मैं मिठाई के टुकड़े को हाथ लगा लूं?''

चाय–पान के उस दौर में तभी मंझोले कद के एक सौम्य पहाड़ी युवक के

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

केबिन में प्रवेश करते ही अवध एकदम-से उसकी ओर मुखातिब हुए- ''आओ, अवधेश आओ, जब से आयी हैं चित्रा, तुमसे मिलने की रट लगाये हुए हैं।''

...और मैं मंगोलियन नयन-नक्श वाले उस निस्पृह से चेहरे के भूगोल में चौथे सप्तक (अज्ञेयजी द्वारा सम्पादित 'तारसप्तक' में से) के महत्त्वपूर्ण युवा कवि अवधेशकुमार को खोज रही थी।

सामान्य-सा प्रश्न मैंने अवधेश की ओर उछाला था। घिराव में सामान्य से ऊपर उठा भी तो नहीं जा सकता। जिज्ञासाएं कुनमुनाती भर रह जाती हैं भीतर।

''क्या बना रहे हैं आजकल...।''

गर्दन से उठकर उस चेहरे ने मेरी ओर देखा भर था। इतनी गूंगी आंखें? हल्के सूजे पपोटों में कंचे-सी गहरे धंसी हुई। रमेश ने अवधेश की आंखों के गूंगेपन को बोल दिये थे-''किताबों के कवर बना रहा है यह आजकल भाभी।''

चुटकी पर कोई हंसा नहीं, अब भी सोचती हूं मैं। शायद रमेश ने चुटकी नहीं ली थी। चुटकी वह ले भी नहीं सकता था। शब्दों में विद्रूप अंखुआ आया था। कोई हंस कैसे सकता था।

व्यस्तता भूलभुलैया का मेला है और शायद ज़िंदगी उस मेले में डोलती स्वयं को खोती-पाती, ढूंढती, ढूंढ लेने पर भी उसे पहचानने में अवश उसे कोई नाम देती हुई एक ऐसी भंवर का हिस्सा बन जाती है, जिसका हश्र सिर्फ डूबना ही होता है...।

बीच के वर्षों में एकाध परिचितों से अवधेशकुमार के बारे में जानने की कोशिश भी की, किंतु अधिकांश से यही जवाब मिला-उससे मिले हुए बहुत अरसा हो गया...।

कुछ अता-पता नहीं। कुछ अन्यों का जवाब था।

कितना कोई किसी को खोज सकता है? कोई स्वयं ही बरामद न होना चाहे तब तो और।

'लाक्षागृह' के पुनः प्रकाशन के संदर्भ में चित्रकार अवधेशकुमार को याद करना मेरे लिए अस्वाभाविक नहीं था। न इस इच्छा का जागना और प्रबल होना कि कहीं से यदि उनकी खोज-खबर मिल जाए तो उनसे मेरा आग्रह होगा कि वही दुबारा 'लाक्षागृह' मुखपृष्ठ तैयार करें। डायरी में सुरेश उनियाल का पुराना नम्बर उपलब्ध हुआ, मगर उस नम्बर पर सुरेश अनुपलब्ध। नया नम्बर जाने क्यों नोट नहीं किया। इसकी वजह शायद यह थी कि छठे-छमासे सुरेश स्वयं फोन कर लिया करता है।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

सुरेश का टेलीफोन नम्बर पाने के लिए बलराम को 'लोकायत' में फोन किया तो जाने क्यों मन में आया कि बलराम भी तो उन दिनों 'सारिका' के सम्पादकीय विभाग में कार्यरत था। अवधेशकुमार से सम्भव है आगे भी वह सम्पर्क में रहा हो। लेकिन बलराम के जवाब ने खामोशी में ढकेल दिया। बाद में सुरेश से चर्चा होने पर उसी जवाब की पुनरावृत्ति ने यही समझाया, कुछ कहानियां अपना अन्त पहले लिख देती हैं। अवधेश की कहानी भी कुछ ऐसी ही थी।

उसे गये हुए बहुत दिन हो गये, देहरादून में ही उसकी मृत्यु हो गई थी। प्लूरि-सी हो गई थी उसे। असल में शराब उसे असमय ले डूबी। 'जिप्सी लड़की' उसका चर्चित कविता संकलन था, जिसे 'पराग प्रकाशन' ने ही प्रकाशित किया था। वह उन्हीं दिनों काम करता था, जिन दिनों उसकी जेब खाली हुआ करती थी। शराब की बोतल पकड़ाकर बहुत-से लोग उससे मनचाहा काम करवा लिया करते थे। रंगों के रसायन की गहरी समझ थी उसे और एक बड़े चित्रकार की अपरिमित सम्भावना...।

उदासी गहरा आई थी। उदासी के आंसू नहीं होते। उसे आंसुओं में बहकर छंट जाना पसंद नहीं। उदासी उसे लम्बे समय तक जीती है, जिसे लेकर वह उदास होती है...।

'लाक्षागृह' के समर्पण पृष्ठ को तैयार करते समय ज़हन में सिर्फ़ और सिर्फ़ अम्मा थीं तब। 'लाक्षागृह' कहानी की सर्वथा अपरिचित, जवानी लांघने को विवश अपरूपा नायिका सुन्नी के संग घटी विडम्बना के सियाह पृष्ठों की छलना से अम्मा ने ही परिचित करवाया था एक रोज। यह कहते हुए कि वही निहाद है नौकरी याफ्ता बिटियन की। 'आधी छोड़ सारी को धावैं, आधी मिलै न सारी पावैं।' अपना मुखड़ा काहे छोड़ रखा था आईने में देखने से करम जली ने...।

अम्मा का नाम लिखते ही एक और झुर्रियों पटा ममत्व से चूता चेहरा अपना नाम दर्ज करवाने आगे बढ़ आया था। पीठ से दोहरी हुई-सी सास पार्वती देवी का। जब-जब ससुराल जाती तो सबकी नज़रें बचाकर दूजी अम्मा कांसे के बड़े से गिलास में दुधहड़ी से दूध भरकर मेरी अंधेरी कोठरी की सांकल हल्के से छू देतीं- "लै बहू, दुधू पीलै। सूतरी-सी देह में ताकत आयेगी।"

समर्पण में दूजी अम्मा का नाम भी जुड़ गया। जुड़ गया तो अब उनकी गलबहियां टूटेंगी नहीं। भले अब दोनों ही इस दुनिया में मौजूद नहीं हैं। वैसे ही रहेंगी जैसे पहली किताब में थीं।

विडम्बना के विद्रूप जीवन में घटते ही रहते हैं और जीवन भी उन्हें झेलने-सहने का आदी हो गए मोर्चों पर फिर से सन्नद्ध होकर कस लेता है।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

...रात में टहलते हुए अक्सर मेरी आंखें आसमान की ओर उठ जाती हैं। सितारों की भीड़ में वो लोग कहां हैं जो हमारे बीच में नहीं हैं...।

किन्हीं भी चार सितारों को मैं उनके नाम दे देती हूं अक्सर। सितारे बदलते रहते हैं हर बार मगर कभी आपत्ति नहीं करते। सितारे कब्र में कैद जो नहीं होते। उनके साथ शिलापट्ट थोड़े ही लगे हुए हैं, नामों के, जो वे आपत्ति करें! मैं सितारों को बताना चाहती हूं कि मेरी इस पुस्तक में वे उसी रूप में मौजूद हैं, जिस रूप में उनकी मौजूदगी में यह पुस्तक पहले आई थी।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

अपनी वापसी की वापसी

इस समय बहुत पीछे पहुंच कर ठिठक गया है मन! न चाहने के बावजूद कि उसे वहां पहुंचने की जरूरत नहीं थी। मुश्किल यही है। कोई आदेश या अनुमति नहीं मांगता वह मुझसे। भीतर पसरे सियाह नीले अंधेरे में समानान्तर अनचाहे ले जाकर जहां चाहे वहां खड़ा कर देता है और आप अवश हो उठते हैं उसकी अवहेलना भरी धृष्टता के साथ हो लेने के लिए।

इस समय यही हो रहा है मेरे साथ।

मैं अपनी मेज पर अपने कमरे में बैठी हुई हूं और वह मुझे खींच ले जाता है अपने साथ किसी और देहरी में।

...एक घर याद आ रहा है। देख रही हूं कि उस घर में प्रवेश करते हुए मेरे चेहरे पर चहकती प्रफुल्लित हंसी खिल आती है जबकि मन की इस ढिठाई से मैं परेशान हूं।

हां, परेशान इधर हूं...।

गुजराती संस्कृति के मनोहारी चटकीले रंगों में रची-बसी उस घर की सुरुचिपूर्ण लोकसिक्त गृह-सज्जा जब-तब आमंत्रित करती रहती है वहां आने के लिए मुझे। आमंत्रित करता रहता है उस घर की छत पर रखा नीले और सुनहरी बेल-बूटियों वाला काठियावाड़ी झूला। झूले पर बैठ गुजराती मसाले वाली चाय के गाढ़े घूंट!

उसी झूले पर बैठे हुए शकुन ने एक रोज कहा था-''यह घर तुम्हें बहुत पसंद है न!''

''इस घर की दीवारों का प्लास्टर बुरी तरह उधड़ रहा है...।''

छत पर दीवारें नहीं थी कि मैं उसके उधड़ रहे प्लास्टर पर गौर कर पाती। अलबत्ता शकुन के चेहरे पर आंखें टिकाते ही महसूस हुआ था।

''ईंटें इतनी नंगी क्यों हैं?''

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

...और तभी एक कहानी मेरे पीछे पड़ गई थी। सच कहूं तो कहानियां मेरे पीछे पड़ती रहती हैं, मैं कहानियों के पास नहीं जाती। न उन्हें बुलाती हूं अपने पास। अब यही देखिए न, उस घर में मेरे अलावा और न जाने कितने लोग आते जाते होंगे। घर को देखते भी होंगे। सराहते भी होंगे। उनके पीछे कहानी क्यों नहीं पड़? जाती?

'अपनी वापसी' को बहुत दिनों तक टाला था मैंने, मगर ज्यादा दिनों तक उसे टरका नहीं पायी थी। उसके प्रकाशित होते ही कानपुर के मेरे बुजुर्ग पाठक हरीश निगम जो मेरी सूचना पर मेरी कहानी पढ़ने के लिए अपनी छोटी सी पेंशन में से 'सारिका' पत्रिका खरीद लाये थे, 'अपनी वापसी' पढ़कर प्रतिक्रिया में लिखा था– ''शकुन की वापसी यदि कहानी में न होती तो बेटा, कहानी कमरे में टंगी अलगनी-सी अधबीच झूलती रहती...।''

बातें कुछ और भी हैं। जिन्हें आपसे बांटना चाहती है। 'अपनी वापसी' बांटना जरूरी लग रहा है। आग्रह टालना मुमकिन नहीं। वैसे, किताब की सुन लेने में हर्ज ही क्या है! वैसे, किताब की कहानी उसके लेखक की जुबानी भी मान सकते हैं इसे आप। तो बात शुरू की जाए।

सत्ताइस वर्ष पूर्व प्रकाशित मेरे तीसरे कथा-संकलन 'अपनी वापसी' के प्रकाशन की कहानी भी कम दिलचस्प नहीं है। प्रकाशक थे उसके 'संभावना प्रकाशन' हापुड़ के कथाकार अशोक अग्रवाल। अब वापसी हो रही है उसकी 'रेमाधव प्रकाशन' से। संबंधों के नये अध्याय खोलने और जीने को तत्पर। पिछले संबंध टूटकर भी टूटते नहीं। वे संबंध किसी भी किताब के जन्मने की देहरी का पर्याय होते हैं। किताब का अतीत नहीं होता है क्या! अतीत न होता तो क्या उसकी कहानी कहना सम्भव होता?

अशोक अग्रवाल ने उस समय कुछेक ध्यानाकृष्ट करने वाली गहरी कहानियां लिखी थीं। हो सकता है उसका कोई कथा-संग्रह भी आया हो, मगर उसे पढ़ पाने का सुयोग मुझे उपलब्ध नहीं हो पाया। 'संभावना प्रकाशन' ने सदैव स्तरीय पुस्तकों का प्रकाशन कर लेखकों के मन में उन दिनों अपनी विशेष जगह बनायी थी। 'संभावना' से ही जुड़े हुए थे 'हुक्का पानी' जैसे उत्कृष्ट कहानी लिखने वाले कथाकार अमितेश्वर। संघर्ष से छीजी हुई सांवली, दुबली-पतली काठी, मगर चेतना के चैतन्य से दीप्त। कथाकार रमेश बत्तरा से लेकर सुरेश उनियाल, महेश और बलराम तक सभी उसके लेखन के मुरीद थे। आज जाने क्यों लगता है कि साहित्य में कुछ बड़ी संभावनाओं को आर्थिक संघर्ष के नरभक्षी पाट उसकी जीवित समाधि

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu
ले लेते हैं और उन संभावनाओं के दिन-रात ग़र्क होने लगते हैं प्रूफ रीडरी में। अमितेश्वर की कहानियां या लघुकथाओं की अनुपस्थिति इधर भीतर कसक पैदा करती है। यह भी जानकारी नहीं है कि वह और उसका परिवार सम्प्रति किस हाल में और कहां है। इसके लिए अमितेश्वर का साहित्य जगत से स्वयं अपने सम्पर्कों को सिकोड़-समेट लेना दोषी नहीं है, दोषी निश्चय ही हैं हम। किन्हीं कारणवश जो हमारे साथ दौड़ नहीं पाता, ठहरकर हम उसे पीछे मुड़कर देखना नहीं चाहते। किन्हीं कारणों से वह निकलकर आना नहीं चाहता तो हम उसे निकालकर लाने में विश्वास नहीं करते। समय गंवाने के लिए समय हमारे पास होना भी तो चाहिए। द्वंद्व उठते भी हैं, मथते भी हैं और पीछा भी करते हैं। भूमण्डलीकरण के इस दौर में साहित्य की असीमित समायी को किसने पिंजड़ों की हदें पहना दी हैं? जवाब फिर भी नहीं मिलते। जाने क्यों मौन के उदर में दुबक जाने में सहूलियत लगती है उन्हें।

उन दिनों दिल्ली आने की तैयारी चल रही थी। दरअसल, बेटे राजीव के सैकेण्डरी के परीक्षाफल के इंतजार में ही हम मुंबई में अटके हुए थे। बच्चे खुश। अवध के बिना एक पल न रह पाने वाली बिटिया अपर्णा (बिट्टू) कुछ अधिक ही। राजीव मेरी तरह खुशी और उदासी के द्वंद्व और दुविधा को झेलता हुआ घोर उत्साह के बावजूद सशंकित था। मुंबई में वह बैडमिण्टन के बेहतरीन खिलाड़ी के रूप में स्थापित था और सैय्यद मोदी के साथ खेलने के लिए रेलवे द्वारा अनुबंधित। अवध ने उससे वादा किया था कि उनकी कोशिश होगी कि वे हरियाणा के 'राई' स्थित स्पोर्ट्स कॉलेज में उसका दाखिला करवाएंगे। बाद में दिल्ली आने पर ज्ञात हुआ कि राई में बैडमिण्टन के प्रशिक्षण को लेकर कोई सुविधा नहीं है। हारकर उसे दिल्ली के हिन्दू कॉलेज में प्रवेश लेना पड़ा। तैराकी से लेकर खेल में अव्वल रहने वाले राजीव को 'हिन्दू कॉलेज' में खेल के चलते दाखिले में कोई दिक्कत नहीं झेलनी पड़ी। मेरी उदासी का कारण सामाजिक कार्यों में मेरी गहरी संलग्नता थी। दरअसल घर-आंगन की चौहद्दियां वहां तक जो पसरी हुई थीं।

दिसम्बर 1982 में हफ्ते के लिए मेरा दिल्ली आना हुआ। इस मकसद से कि घर किस इलाके में लेना उचित और सुविधाजनक होगा, यह पहले ही तय कर लेना बेहतर होगा। अवध ने बताया, घर तुम पसंद कर लो। मकान मालिक और 'टाइम्स ऑफ इण्डिया' के बीच अनुबंध हो जाएगा। उस समय अवध अंसारी रोड, दरियागंज में शब्दकुमार जी की सहलज के मायके की कोठी की छत पर स्थित कमरे में, यानी पारिवारिक मित्र और जाने-माने पटकथा लेखक गुरहा साहब के घर पर मियानी में किराये पर रह रहे थे। भाभी के दिल्ली आने की खुशी में एक अच्छी-सी पार्टी होनी

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

चाहिए, यह रमेश बत्तरा की इच्छा थी। उसी पार्टी में अमितेश्वर से मुलाकात हुई थी। पार्टी के दौरान ही संकोची अमितेश्वर ने आग्रह किया था कि आप अपनी एक किताब 'संभावना प्रकाशन' को भी दीजिए। दूसरे रोज अशोक अग्रवाल से भी बात हुई कि निश्चय ही अमितेश्वर ने मेरे विषय में उनसे चर्चा की होगी। मुंबई लौटते ही कहानियों को चुनकर उनका अनुक्रम तैयार कर 'अपनी वापसी' की पाण्डुलिपि मैंने उन्हें भिजवा दी।

अवध का सुझाव था, 'अपनी वापसी' के लिए 'राजपाल एण्ड संस' के विश्वनाथजी से बात कर लेतीं। किसी कार्यक्रम में भेंट होने पर उन्होंने अवध से संभवत: कहा होगा कि हम चित्राजी की कोई कृति प्रकाशित करना चाहेंगे। अवध की बातों से यह भी महसूस हुआ था कि संभावना प्रकाशन को लेकर वे तनिक भी खिन्न नहीं हैं बल्कि अशोक अग्रवाल की तारीफ में कुछ कसीदे भी पढ़े थे।

हमेशा से यही इच्छा रही है। पुस्तक के मुखपृष्ठ पर किसी चित्रकार की चित्रकृति हो या कोई उसका मुखपृष्ठ विशेष रूप से चित्रित करे तो शब्द और रंग की जुगलबंदी के आयतन में उसकी चेतना की गुहारों को सुनने-गुनने की जिम्मेदारी से लैस होता सुधी पाठक नितांत भिन्न विधाओं की अभिव्यक्ति क्षमता के आयामों से परिचित हो सकेगा। संभव है ज़िद की हद तक इस सोच के पीछे मेरी कोई मनोग्रंथि की भूमिका हो! चित्रकला में आगे बढ़ने की दिशा में मेरे सारे प्रयास निरर्थक सिद्ध हुए और मैं रंगों की दुनिया में इतना पीछे छूट गयी कि कोई मेड़, पगडंडी शेष बची ही नहीं जो वापस उस देहरी तक मुझे पहुंचा पाती। 'इण्डियन एक्सप्रेस' में उस कॉलम को जरूर देखती, जिसमें यह सूचना होती कि फलां-फलां आर्ट गैलरी में फलां-फलां चित्रकार की प्रदर्शनी लगने जा रही है और मैं तमाम मसरुफियत को धत्ता बताकर कभी 'सिमरोजा आर्ट गैलरी' तो कभी 'जहांगीर' तो कभी सोफ़िया कॉलेज की 'सोफ़िया दचिन' की ओर भाग लेती।

अवध से कहलवाया था मैंने कि अशोक अग्रवाल से वे स्पष्ट कह दें कि 'अपनी वापसी' के मुखपृष्ठ पर किसी चित्रकार की चित्रकृति दें। अगर वे चाहें तो मैं मुंबई से किसी प्रसिद्ध चित्रकार की चित्रकृति की टी.पी. उन्हें भिजवा सकती हूं। 'अपनी वापसी' छपकर हाथ में आयी तो खिन्नता का दंश हफ्तों अन्यमनस्क किये रहा। मुखपृष्ठ कलात्मक नहीं था, ऐसी बात नहीं थी। जिसने भी किताब देखी, खूब सराहा। एक खूबसूरत युवती का श्वेत-श्याम कोलाज से सजा आवरण।

अपनी खिन्नता अवध से छिपा नहीं पायी तो उनका जवाब और आहत कर गया। 'सारिका' की व्यस्तता में चितुल, मैं तुम्हारी बात अशोक तक पहुंचा ही नहीं

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu
पाया था। दूसरे संस्करण में बदल जायेगा मुखपृष्ठ। अपने सामने बदलवा लेना, अब तो तुम यहां (दिल्ली) आ ही गई हो।

'अपनी वापसी' समर्पित थी राणा दम्पती को।

हम जहां भी रहे पड़ोसियों के मामले में सदैव सौभाग्यशाली रहे हैं। नहीं मालूम पड़ोसियों ने हमें पड़ोस में पाकर कैसा अनुभव किया। लेकिन उनके सदैव सहयोगी आत्मीय व्यवहार ने यही प्रतीति करवायी कि वे अपनी पारिवारिक जिम्मेदारियों को निभाते हुए हमारे छोटे से परिवार को भी उसी का हिस्सा मानते रहे हैं।

घाटकोपर पश्चिम (मुंबई) में 'श्रेयस टाकीज' के बगल में बनी 'शांति निकेतन' कॉलोनी के एक रूम फ्लैट को किन्हीं घरेलू कारणों के चलते छोड़ने के लिए मजबूर होने पर हमें जो दूसरा मकान घाटकोपर, पश्चिम में बड़ी मुश्किल से मिला, वह था मुख्य सड़क कुर्ला, आगरा रोड से दक्षिण की ओर लगभग डेढ़ किलोमीटर भीतर जाकर पहाड़ी की खूबसूरत तलहटी में बसी हिमालयन कोऑपरेटिव हाउसिंग सोसाइटी में। वहां रहते हुए हमेशा यही महसूस हुआ कि हम किसी पर्वतीय घाटी के शांत सुरम्य वातावरण में रह रहे वाशिन्दे हैं। मुंबई वहां से कोसों दूर है। हिमालयन कॉऑपरेटिव हाउसिंग सोसाइटी पहाड़ियों की कॉलोनी थी। फ्लैट्स पहाड़ियों के थे, मगर अधिकांश मकान मालिकों ने अपने मकान किराये पर उठा रखे थे। प्रसिद्ध लेखक प्रोफेसर डॉ. देवेश ठाकुर का फ्लैट भी वहां किराये पर चढ़ा हुआ था। रहते वे रुइया कॉलेज के स्टाफ क्वार्टर में थे।

राणा दम्पती मूल निवासी तो नेपाल के थे किंतु धर्मशाला में उनका अपना खुद का पुश्तैनी मकान था। रिश्तेदारी में नेपाल आना-जाना उनका गाहे बगाहे बना रहता था। गुलाब सिंह राणा जी मझगांव डाक में हिन्दी विभाग में वरिष्ठ अधिकारी के पद पर कार्यरत थे। बाद में उन्होंने ही बताया था कि लेखक महेन्द्र कार्तिकेय, जिन्हें डॉ. धर्मवीर भारती चुटकी भरे अंदाज में हिन्दी का पहलवान लेखक कहा करते थे और उनके द्वारा समायोजित साहित्यिक संगोष्ठियों को दंगल; मझगांव डाक में हिंदी अधिकारी के पद पर आसीन हैं। महेन्द्र कार्तिकेय से अवध बखूबी परिचित थे, मैं नहीं। उनके लेखादि धर्मयुग में अवश्य पढ़े हुए थे। मिली थी उन्हें सिर्फ एक बार सोमैया कॉलेज के दिनों में नेशनल कॉलेज बांद्रा में उन्हीं के द्वारा आयोजित उस साहित्यिक संगोष्ठी में जिसमें महावीर अधिकारी और स्वतंत्र पत्रकार जुगनू शारदेय के मध्य मतवैभिन्य के चलते आपस में तलवारें खिंच गयी थीं। डॉ. धर्मवीर भारती के मंत्रमुग्ध कर देने वाले अभिभाषण को भी पहली बार मैंने उसी संगोष्ठी में सुना था। इस प्रसंग का जिक्र मैंने भारतीजी पर लिखे अपने लेख 'उस गली से इस गली

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

तक' में किया है। जिसे 'सारिका' ने दिसम्बर 1986 के अपने धर्मवीर भारती विशेषांक में प्रकाशित किया था।

कठिन समय था वह। देश और समाज अनेक भीतरी और अंतरराष्ट्रीय दबावों से जूझ रहा था। न समय के संक्रमण चुनौतियां कम करने को राजी थे, न हम उससे हार मानने को। 1971 की बात है। अवध के दफ्तर के लिए घर से निकलते ही सुबह दस-सवा दस बजे के करीब नन्हीं बिट्टू को गोदी में उठाये, पहली कक्षा के विद्यार्थी बेटे गुड्डू की उंगली पकड़े, उसका बस्ता दूसरे कंधे पर लादे, डेढ़ किलोमीटर पैदल चलकर मैं भांडुप की बस पकड़ने के लिए मुख्य सड़क पर पहुंचती। गुड्डू को 'सेण्ट जेवियर्स' स्कूल पहुंचाने के बाद मंगतराम पेट्रोल पम्प पर बने कामगारों के कोठरीनुमा कार्यालय में आ जाती। जहां मौसम की उमस में मेहनतकशों की अपनी बस्तियों में पानी की कमी के चलते दो-दो दिन सनलाइट साबुन की बट्टी का मुंह न देख पाने वाले कपड़ों से फूटती पसीने की गंध उबकाई न पैदा कर, दुविधा झेलती प्रतिरोध की छटपटाहट को बाहर निकाल स्वयं को दर्ज करने की सन्नद्धता की आग से भर देती। सभी लोग विशेष ध्यान रखते कि वहीं खेलती, कोठरी से अंदर-बाहर होती, चंचल बिट्टू नजरों से ओझल न हो पाये। विस्मय होता खाली जेबों वालों के विशाल हृदयों पर। जाने कहां से उनकी खाली जेबों में बिट्टू के लिए केले, चीकू, लॉलीपोप खरीदने के लिए चिल्लर निकल आती। डांटने पर पलटकर जवाब मिलता, बीड़ी नहीं पियेंगे एक रोज तो कौन-सी आफत टूट पड़ेगी तायी?

पड़ोसन श्रीमती राणा को जैसे ही मैं घर की चाभी थमाने के लिए उनके घर की घण्टी की स्विच पर उंगली रखती, मुझे बेतरह लदा-फदा देख वे असहज हो उठतीं।

उनके परेशान मनोभावों को भांपना मुश्किल नहीं था।

चिंतित स्वर में उन्होंने एक रोज मुझे टोक ही दिया कि मैं इस नन्हीं जान बच्ची को अपने संग धक्के खाने के लिए बाहर क्यों ले जाती हूं!

उदास होकर मैंने उन्हें जवाब दिया था- उपाय क्या है? क्रैच में उसे छोड़ नहीं सकती। कलेजा पत्थर का नहीं कर पा रही हूं। मगर कारण शायद मात्र इतना भर ही नहीं है। मजबूरी में उसे छोड़ने के लिए राजी हो भी जाऊं तो क्रैच का खर्च वहन करना चादर से बाहर पैर निकालना होगा, जो मेरे लिए सम्भव नहीं।

श्रीमती राणा ने संजीदगी से मेरी बात काटी थी-'भरोसा कर सकती हैं तो बच्ची को मेरे पास छोड़ दें।'

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

...एक सांझ गुड्डू को स्कूल से लेकर लौटने पर पता चला कि बिट्टू अभी तक सो रही है।

जबकि होता यह था कि श्रीमती राणा के घर की घण्टी बजाते ही हमारा रास्ता देखती बिट्टू उतावली-सी भीतर से घर का दरवाजा पीटने लगती।

...हुआ यों था। उस रोज बिट्टू ने उनकी पाली कुतिया रूबी के हड्डियों वाले विशेष बिस्किट उठाकर खा लिये थे। बिट्टू पर नाराज रूबी के भौंकने पर श्रीमती राणा की नजर बिट्टू पर गयी। घबराकर वे उसी समय पास के असल्फा विलेज में रह रहे एक परिचित डॉक्टर जोसफ के घर उसे दिखाने ले गयीं। संयोग से डॉक्टर घर पर ही थे। जोसफ ने उन्हें आश्वस्त किया कि घबराने जैसी कोई बात नहीं है। वे बिट्टू को उल्टी करवा रहे हैं। साथ में दवा दे रहे हैं। घर पहुंचते ही उसे खिला दें। दवा खाकर बच्ची अच्छी नींद ले लेगी। कोशिश करें कि रूबी के बिस्किट बच्ची की पहुंच से दूर रहें। रूबी को बिस्किट खाने के लिए दें तो उसे कमरे में बंद करके दें।

बिट्टू से ही जुड़े हुए एक अन्य रूह कंपा देने वाले प्रसंग का जिक्र श्रीमती राणा के संदर्भ में यहां करना चाहूंगी...।

दीपावली के आस-पास की घटना होगी।

प्रतिदिन की भांति उस शाम को मैं गुड्डू को स्कूल से लेकर घर लौटी तो पाया कि रसोई में साग-सब्जी नदारद है। रात के वक्त ही अवध घर में ठीक से खाना खा पाते थे। तय किया, थकान के चोंचले को झटक असल्फा विलेज के सब्जी बाजार से दो-चार रोज की सब्जी लाकर फ्रिज में भर देना उचित होगा। इसी बीच गुड्डू कॉलोनी के बच्चों के साथ नीचे खेलने चला गया। पलंग पर बैठी बिट्टू खिलौनों में मस्त थी। सोचा, आधे घण्टे की ही तो बात है, दूध की बोतल बनाकर उसके सिरहाने रख देती हूं। भूख लगने पर वह बोतल स्वयं उठा लेगी। हो सकता है इसी बीच अवध भी घर आ जायें। 'लैच' की एक चाभी उनके पास रहती ही है। श्रीमती राणा को भी अपने सौ काम निपटाने होते हैं। बिट्टू को प्यार से समझाया कि खेलती रहना। दूध रखा है उसका। अभी गयी और अभी आयी। काम निपट जाने पर सब्जियों से भरे थैले लटकाये घर की ओर मुड़ी। मन ही मन मुदित हुई कि दो-चार रोज की सोचकर गई थी, मगर हफ्तेभर की सब्जियां वाजिब दामों में बटोर लाई। फ्रिज भरा देख अवध परम प्रसन्न हो उठेंगे। ताजी सब्जियों के मामले में खासे देहाती रुचि के ठहरे। घीया, तोरई रोज मिल जायें तो खुश।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

घर के निकट पहुंची तो बिल्डिंग के प्रांगण में लोगों की भीड़ देख कौतूहल से भर उठी।

इतनी भीड़? आखिर क्यों? किसी के घर कोई हारी-बीमारी में भी तो पड़ा हुआ नहीं था!

तभी पहले माले के मेहरोत्रा साहब मुझे देखते ही मेरी ओर घबराये हुए से लपके। मुंह पर उंगली रखते हुए उन्होंने मुझे चुप रहने का संकेत करते हुए तीसरे माले पर स्थित मेरे घर की बालकनी की ओर इशारा किया। दृश्य देख कलेजा मुंह को आ गया। यह सच नहीं हो सकता। मेरी मासूम बिट्टू बालकनी की मुंडेर पर चढ़ी बैठी दोनों और पैर लटकाये मजे से मुस्कुराती हुई नीचे भीड़ को देख रही थी। कांपते हुए पर्स में से घर के लैच की चाभी निकाल मेहरोत्रा साहब की ओर बढ़ाते हुए मैं कब बेहोश हो गई कुछ पता नहीं। आंख खुली तो स्वयं को घर के पलंग पर लेटे हुए पाया। पापा की गोदी में चढ़ी हुई बिट्टू को उनकी नाक में उंगली डालते और बाहर निकालते उनके 'उई' करने पर खिलखिलाते हुए देखा। अवध भी उसके खेल का हिस्सा बने हुए उससे जुगलबंदी करते हुए नजर आये। सारा वाक्या जानकर मैं पश्चाताप से भर उठी।

घर से निकलने से पहले न मैंने घर की बालकनी का दरवाजा बंद किया था, न 'लैच' की चाभी राणा दी को थमायी थी।

घर लौटे मेहरोत्रा जी की नजर मेरी बालकनी की ओर अनायास ही उठ गयी थी। नजारा देख वे स्तब्ध हो उठे थे। फौरन उन्होंने पड़ोसी और नीचे वालों को घर की चादरों को पकड़कर नीचे खड़े रहने की हिदायत दी और ऊपर मेरे घर की ओर भागे। घण्टी डरकर नहीं बजायी कि कहीं बच्ची हुड़ककर संतुलन न खो बैठे। दरवाजे पर हल्के हाथों की 'टुक-टुक' पर जब उन्हें पलटकर कोई प्रतिक्रिया नहीं मिली तो समझ गये कि मैं घर से अनुपस्थित हूं या सो रही हूं, वैसे यह सोने का समय तो नहीं है, सोचा उन्होंने। फिर उन्होंने घर के लैच की चाभी के लिए राणा दी की घण्टी बजायी। उनके पास 'लैच' की चाभी देकर तो मैं गयी नहीं थी। समय नहीं था। राणा दी ने फोन कर पीछे की बिल्डिंग में काम कर रहे सोसाइटी के प्लम्बर को, जिसे उनके घर में भी काम करने आना था, को काम छोड़कर भागकर आने के लिए कहा और उसे पांच सौ रुपये का लालच दे जान जोखिम में डालकर छत के ऊपर से तीसरे माले की मेरी बालकनी में उतरने को बाध्य किया। बिल्डिंग के जीने की सीमेंट की जाली के सहारे उचककर प्लम्बर ने मेरी बालकनी पर पांव

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu
टिकाया और दूसरा हाथ लम्बा कर बिट्टू को भीतर की ओर लुढ़काकर अंदर से घर के 'लैच' को खोल घर का दरवाजा खोल दिया...।

मैं श्रीमती राणा की यानी कि अपनी राणा दी की कर्जदार जीवनपर्यंत बनी रहना चाहती हूं...।

पुस्तक जब राणा दम्पती को समर्पित की थी तब बिट्टू हमारे बीच जीवित थी। आज जब 'अपनी वापसी' का पुन: प्रकाशन के लिए देना चाह रही हूं उसी रंग रूप में तो बिट्टू हमारे बीच जीवित नहीं है।

राणा दी इन दिनों लंदन में अपनी बड़ी बेटी रेणु के पास हैं...।

मैं बिट्टू से कहना चाहती हूं, तुम आज हमारे बीच नहीं हो, मगर मैं तुम्हारी दूसरी मां से बेईमानी कैसे कर सकती हूं। क्योंकि अगाध वात्सल्य की प्रतिमूर्ति स्त्रीत्व की तलछट का पर्याय ऐसी ही बड़ी स्त्रियों ने समाज में यह प्रतिमान कायम किया है कि जन्म देने वाले से बड़ी होती है यशोदा मां।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

कहानियां लिखती कहानियां

कुछ कहानियां प्रकाशन के साथ ही पत्रिका की जिल्द से बाहर निकलकर स्वयं कहानियां लिखने लगती हैं...।

'जगदम्बा बाबू गांव आ रहे हैं', कथा संकलन की शीर्षक कहानी 'जगदम्बा बाबू गांव आ रहे हैं' पहली बार 9 अगस्त 1987 को 'धर्मयुग' के स्वाधीनता विशेषांक में प्रकाशित हुई थी। कहानी कुछ महीने पहले भी छप सकती थी, लेकिन डॉ. भारती ने सूचित किया था कि वे 'जगदम्बा बाबू गांव आ रहे हैं' को 15 अगस्त के 'धर्मयुग' के स्वाधीनता विशेषांक में विशेष रूप से प्रकाशित करना चाहते हैं। उन्हें 'जगदम्बा बाबू गांव आ रहे हैं' भारतीय राजनीति से आम आदमी के मोहभंग और उस पर से उठते विश्वास की गंभीर कहानी लगी। मैं डॉ. भारती के स्वयं की रचनात्मकता के प्रति 'गम्भीर' शब्द को उनकी गहरी सदाशयता के रूप में लेती रही हूं। उन्होंने व्यथित स्वर में कहा था- "राजनीतिक भ्रष्टाचार और उसके बढ़ते अपराधीकरण ने आजादी पाने के आम आदमी के सपने को बड़ी निर्ममता से चूर-चूर कर दिया है। बावजूद इसके उनके लिए स्वराज 'जगदम्बा बाबू गांव आ रहे हैं' के रूप में बची-खुची वह आस है जनतंत्र की, जिसका सपना अनेक छलावों के घात-प्रतिघात के बाद भी उनकी आंखों में शेष है। सुक्खन भौजी वही आमजन हैं चित्रा!"

कहानी ने प्रकाशन के साथ ही 'धर्मयुग' के विशाल पाठक वर्ग के मर्म को गहरे उद्वेलित किया था। डॉ. साहब के 'गम्भीर' विशेषण को व्याख्यायित करते हुए और मुझे आश्वस्त कर गई थीं पाठकों की निरंतर आवक बनाये हुए विचारोत्तेजक पत्र प्रतिक्रियाएं कि सर्वहारा की प्रतिनिधि 'जगदम्बा बाबू गांव आ रहे हैं' की सुक्खन भौजी और उनका विकलांग बेटा ललौना, अपने संघर्ष में अकेले नहीं हैं...।

इन्हीं तमाम पत्रों में से एक पत्र डॉ. धर्मवीर भारती-सम्पादक 'धर्मयुग' के नाम से था। पत्र मात्र पत्र भर नहीं था, सीधे-सीधे कानूनी कार्यवाही की धमकी थी। मान-हानि का नोटिस। यह भी कि क्षत्रियों की प्रतिष्ठा पर कीचड़ उछालने की

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu
सायास कोशिश है 'जगदम्बा बाबू गांव आ रहे हैं'। संग यह भी कि 'धर्मयुग' जैसी प्रतिष्ठित पत्रिका को ऐसी कोशिशों को सफल बनाने के मंच बनने से बचना चाहिए।

...लेखिका की उद्दण्डता का उपचार वे जानते हैं कि कैसे किया जाना चाहिए। वह नितांत पारिवारिक मामला है...।

भारती जी अनमने हो आये थे। सुनकर मैं भी।

भारती जी ने कहा था कि वे नहीं चाहते हैं कि इस कहानी को लेकर कोई कानूनी बवाल खड़ा हो। हालांकि 'धर्मयुग' और उन पर समय-समय पर खड़ी की गई कई कानूनी अड़चनों का सामना उन्होंने किया है और वे अब भी कर सकते हैं। मगर वे इस परिप्रेक्ष्य में मेरे घरवालों से दूर रहना ही वाजिब समझते हैं।

डॉ. साहब की खिन्नता स्वाभाविक थी। बहुत पुराना कड़वाहटें उगलता हुआ एक प्रकरण अनायास स्मरण हो आया था उन्हें। जिसका संबंध हमारे परिवार वालों से जुड़ा हुआ है।

1965 में मेरी और अवध की शादी को लेकर खिन्न घरवालों ने हमें अलग करने के लिए साम, दाम, दण्ड, भेद की सभी युक्तियां आजमा डाली थीं।

उनके राजनीतिक सम्पर्क और प्रभाव की ही परिणति थी कि उस समय के मशहूर मराठी अखबार 'मराठा' के सम्पादक आचार्य अत्रे ने, जो मराठी नाट्यजगत के जाने-माने प्रभावशाली रंगकर्मी थे, हमारे ब्याह के विरोध में 'मराठा' में एक अग्रलेख लिखा था। जिसकी सुर्खी थी 'हाच तो बदमाशा, 'टाइम्स ऑफ इण्डिया' च उपसम्पादक-अवध नारायण मुद्‌गल'। सुर्खी के सामने अवध की तस्वीर भी प्रकाशित की गई थी। भीतर हमारे ब्याह के प्रसंग के साथ-साथ डॉ. धर्मवीर भारती और पुष्पा शर्मा के अवैध संबंधों की चर्चा का मसाला भी उसी लेख में विस्तार से पिरोया हुआ था कि पत्नी कान्ता भारती के रहते हुए दोनों मुंबई में साथ रहते हुए रंगरलियां मना रहे हैं। आशय यह है कि 'टाइम्स ऑफ इण्डिया' जैसी प्रतिष्ठित समाचार संस्था में कैसे-कैसे चरित्रहीन सम्पादक और उपसम्पादक काम कर रहे हैं, जिनके चलते उनकी विश्वसनीयता को आघात पहुंच रहा है।

आज जाने क्यों भारतीजी के साथ स्वर्गीय लगा पाना मेरे लिए सम्भव नहीं हो पा रहा है...। वैसे भी 'अंधायुग', 'कनुप्रिया' और 'सूरज का सातवां घोड़ा' जैसी कालजयी कृतियों का लेखक 'स्वर्गीय' हो भी नहीं सकता उनके प्रशंसकों के मन में।

बहरहाल, भारती जी ने यह भी बताया था कि एक तो वह निरंतर अपने गिरते हुए स्वास्थ्य के चलते अत्यधिक चिंतित हैं। दूसरे 'धर्मयुग' को लेकर वर्तमान

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

प्रबंधन का वितृष्णा पैदा करने वाला जो रवैया इधर पनप रहा है, उससे वह सहमत नहीं हो पा रहे हैं। मानसिक तनाव गहरा है। 'धर्मयुग' का वर्तमान आकार भी वे छोटा करना चाह रहे हैं, जो उनके लिए स्वीकार्य नहीं है और तकलीफदेह है। 'धर्मयुग' से वे कभी भी अलग हो सकते हैं। उम्र भी हो रही है। बावजूद इसके अशोक जैन जी का आग्रह उनके बने रहने के पक्ष में है। बेहतर होगा कि इस संदर्भ में मैं अपने परिवार के उस असंतुष्ट बुजुर्ग से व्यक्तिगत तौर पर क्षमा-याचना कर लूं और मसले को निजी स्तर पर ही निपटा दूं।

क्षोभ और द्वंद्व में डूबी कई दिनों तक अनिर्णय की स्थिति से स्वयं को उबारने के लिए छटपटाती हुई अंत में मैं इस निर्णय पर पहुंची कि अपने चेतन से विश्वासघात करना संभव नहीं है मेरे लिए।

पाठकों के पत्रों ने मेरे निर्णय को भरभराने नहीं दिया। पीठ थपकाते सम्बल देने आगे बढ़ आये। 'धर्मयुग' के चार अंकों तक उनके पत्र निरंतर छपते रहे।

उन्हीं दिनों, पंचशील प्रकाशन से प्रकाशित उस वर्ष की श्रेष्ठ कहानियों के एक संकलन का संपादन करते हुए वरिष्ठ कथाकार हेतु भारद्वाज ने 'जगदम्बा बाबू गांव आ रहे हैं' को संकलन में सम्मिलित कर-मेरे मनोबल की पीठ थपथपाई। उसके बाद अनेक श्रेष्ठ अन्य कथा संकलनों में भी 'जगदम्बा बाबू गांव आ रहे हैं' को सम्मिलित किया गया।

बस, मैंने एक काम किया। अपनी परमप्रिय कानपुर वाली बिट्टी बुआ को प्रतिवाद भरा एक खत लिखकर भेज दिया। वे घर के बड़ों से खुद सोचें और मुझे जीने की गुंजाइश दें। परिवार से जब मुझे घरनिकाला मिला ही हुआ है तो फिर मैं क्या लिखती हूं क्या नहीं, इससे उन्हें मतलब? और अगर मान लो, घर से निकाला न भी मिला हुआ होता, तब भी मैं अपनी अभिव्यक्ति चेतना को किसी भी ठियां छोड़ने-रखने को राजी न होती।

'धर्मयुग' से आखिर डॉ. धर्मवीर भारती 26 नवम्बर, 1987 को अलग हो ही गये।

बिट्टी बुआ की पहल के चलते क्षत्रियों की प्रतिष्ठा का मामला बुझा तो नहीं मगर उसकी लपलपाती लपटों की भभक अलबत्ता किसी सीमा तक कुछ शान्त हो गयी और मैं एक बार फिर उस लपट से झुलसने से बच गयी। चूल्हे में तपे अगियारी-सी...।

उस अगियार से राख हटाकर एक बार फिर उसे मेरे विरुद्ध फूंका गया, जब

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu
इसी संग्रह की अन्य कहानी 'लकड़बग्घा' 15 दिसम्बर 1990 के नववर्ष के उपहार विशेषांक में गणेश मन्त्रीजी के सम्पादकत्व में प्रकाशित हुई थी।

इस बार मैंने अपनी अप्रतिम सुन्दरी बिट्टी बुआ को बिचौलिया बनाते हुए उन्हें कोई चिट्ठी नहीं लिखी। सीधे उन्हीं लोगों को लिखी, क्योंकि चेतावनी भरा नोटिस सीधे मुझे ही भेजा गया था।

लिखी गयी उस चिट्ठी में मैंने उन्हें यह जरूर लिखा था। उस लिखे हुए को मैं अब तक विस्मृत नहीं कर पायी हूं कि 'कुटुम्ब के लिए मर गयी या मार दी गयी लड़की के मन में उसकी लाख कोशिशों के बावजूद उसका गांव-जवार उसके भीतर से बेदखल नहीं होता न गांव जवार ही उसे अपने गली-गलियारों से बेदखल कर पाता है जिसकी छाती की भूसी-माटी पर अब भी उसके पांवों के निशान शेष होंगे।' बिट्टी बुआ से यह भी खबर मिली थी। जख्मी मन-तन के घावों पर लगी पुलटिस की तरह कि जिस घर में मुझे जिन्दा रहते मरा हुआ घोषित कर दिया था, उसी घर में मुझे जिन्दा रखने की कोशिश हो रही है। गांव से अचानक रात साढ़े दस-ग्यारह के बीच नरेन्द्र भैया का फोन आया था एक रोज। चित्रा, आकाशवाणी के नेशनल चैनल पर तुम्हारी कहानी 'भूख' का नाट्यरूपान्तरण सुना-आंखें भीग गयीं।

आकाशवाणी के नेशनल चैनल के लिए प्रोड्यूसर सोमदत्त शर्मा ने 'भूख' का नाट्यरूपान्तरण करवाया था। उसे अंग्रेजी में किया था कथाकार कवि गंगाप्रसाद विमल ने!

जीवित हुई बिटिया को घर गुहारने लगा। आजी के बचने की उम्मीद नहीं है, बिटिया आकर देख जाओ। देखना चाहती है वह तुम्हें! तड़के मच्छरदानी के भीतर हाथ डाल आजी झकझोर के उठा दिया करतीं थीं-'बिटिया, गंगा नहाय क न चलिहां? उठठोऽऽ कपड़ा लई लेयो अपने...।'

पहुंची तो खमसार में मात्र मुलाकात हुई आजी के खाली पड़े पलंग से। पलंग की पाटी पर सिर टिकाया तो एकाएक महसूस हुआ। सिर को फूली हुई नसों वाला एक हाथ सहला रहा है...।

सोच रही हूं और जब-तब इस विषय पर सोचती रहती हूं कि कहानियों के द्वारा लिखी गई कहानियों को कैसे लिखूं!

अनुमति देंगी कहानियां? देंगी; जरूर देंगी। शायद कोशिश किये बिना ही मैं अनजाने संशय पाले बैठी हुई हूं। उनके भीतर की समायी इतनी चिरकुट नहीं होती कि मैं उन्हें लिखना चाहूं तो वे मेरी कलाई धर लेंगी...।

यह भी उल्लेख कर देना अनुचित न होगा कि अपने छठे कथा-संकलन का

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

नाम मैंने इसी उत्पाती पाठकों की दुलारी कहानी के नाम रख दिया 'जगदम्बा बाबू गांव आ रहे हैं'।

'जगदम्बा बाबू गांव आ रहे हैं' कथा-संग्रह का प्रथम प्रकाशन 18 वर्ष पूर्व 1992 में 'नेशनल पब्लिशिंग हाउस' द्वारा हुआ था। प्रकाशक थे उसके कन्हैयालाल मलिक। लाड, मान,प्यार से हम सब उन्हें बड़े 'मालिक साहब' कहकर पुकारा करते थे। उनके लिए मैं चित्रा नहीं रचना थी। एक रोज शानी जी के घर पर उन्होंने बड़े मनुहार से कहा था- अपनी कोई पाण्डुलिपि प्रकाशन के लिए हमें क्यों नहीं देती? हम अच्छी किताबें छापते हैं! तुम्हें छापकर हमें खुशी होगी रचना। बड़े मलिक साहब आज हमारे बीच नहीं हैं मगर उनकी कमी खलती है। वो दिन लेखक प्रकाशक के बीच व्यावसायिक रिश्तों और अनेक मनमुटावों के बावजूद, गहरी आत्मीयता के सुनहरे दिन थे, जिसकी ऊष्मा अंकुआए सम्बन्धों के दुख-सुख का सोख्ता हुआ करती थी। इन्हीं ऊष्माभरी कड़ियों की एक कड़ी थे 'सामयिक प्रकाशन' के प्रकाशक जगदीश भारद्वाज। स्वर्ग तक कोई तार-बेतार नहीं जाता कि पहले की तरह उनसे उन मुद्दों पर संवाद कर सकूं जिन पर उनकी बेबाक राय कुछ उलझी गांठों को अपनी चुटकी से, मिनटों में खोल दिया करती थीं। उसी कड़ी में हमारे दरम्यान अब भी मौजूद हैं अपनी बुजुर्गियत की सेहत सरियाये हुए प्रभात प्रकाशन के श्यामसुन्दर जी। मानुष से अमानुष होते मनुष्य को बार-बार अपनी सहज सुबोध कविताओं में चेताते, गुहारते 'राजपाल एण्ड संस' के प्रकाशक विश्वनाथ जी, 'हिन्द पॉकेट बुक्स' का क्रान्तिकारी इतिहास रचने वाले दीनानाथ मल्होत्रा जी, 'राजकमल' की शीला सन्धू जी और 'किताब घर' के सत्यव्रत जी। इन सबका उल्लेख 'कहानियां लिखतीं कहानियां' के सन्दर्भ में इसलिए कि, प्रकाशकों की युवा पीढ़ी प्रकाशन को मात्र व्यवसाय ही न समझे, लेखक-प्रकाशन के मध्य पनपने वाले उस बिरादरी भाव को पुख्ता करने वाली उस आत्मीयता को भी पल्लवित करे, जो कभी उनके बीच हुआ करती थी और जो आज बाजारवादी मानसिकता के पीछे इस कदर दुबकने को व्याकुल हो रही है कि लगता है उस परस्परता को दुबारा हासिल करना अब दोनों जमातों के लिए दुर्लभ लक्ष्य है...।

'जगदम्बा बाबू गांव आ रहे हैं' मैंने समर्पित की थी 'फिल्म इण्डस्ट्री जनरल' के यशस्वी सम्पादक और फिल्मों के मशहूर संवाद और पटकथा लेखक, पारिवारिक आत्मीय, शब्दकुमार जी को...।

...1980 के 'फिल्मफेयर अवार्ड' समारोह की मुम्बई के माटुंगास्थित षड़मुखानन्द हॉल की वह इन्द्रधनुषी शाम अनायास स्मृतियों में आंखें खोल रही है!...

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

बी.आर. चौपड़ा की मील का पत्थर फिल्म 'इंसाफ का तराजू' के संवेदनपूर्ण संवादों के लिए कुमार दा को उस वर्ष के 'फिल्मफेयर अवार्ड' से नवाजा गया था।

फिल्म समीक्षकों का कहना था कि 'इंसाफ का तराजू' जैसा कोर्ट रूम प्रभावी ड्रामा पहले कभी रजतपट पर अवतरित नहीं हुआ।

हम सब आत्मीय उनके सम्मानित होने पर खुशी से छलक-छलक आये थे। तीसरे रोज उस महत्त्वपूर्ण अवसर को उत्सवित करने के लिए जब हम सब उनके गांधीनगर, बान्द्रापूर्व वाले घर में एकत्र हुए तो जमावड़े के बीच कुमार दा अचानक मुझसे उन्मुख हो ऊंचे स्वर में लगभग चुनौती देते हुए से बोले थे-''क्यों चित्रा, अब तो मैं इस लायक हो गया हूं कि तुम मुझे अपनी कोई किताब समर्पित कर सको''

खलील जिब्रान के दर्शन की सूक्ष्म तार्किक परतों के अन्वेषक और गहरे मीमांसक का शायद यह बड़प्पन था, मुझे बड़े होने के अहसास से पूरने के लिए।

कितने कम लोग होते हैं ऐसे, मगर होते जरूर हैं जिनकी हमेशा यह कोशिश होती है कि वह किसी की मेहनत को अपनी सदाशयता से तब तक सींचते रहते हैं, जब तक उनकी मेहनत अपनी जड़ों से अपनी उठान के लिए आवश्यकतानुसार पानी खींच पाने का सामर्थ्य स्वयं में विकसित न कर लें!

21 जून, 2008 की एक दिन चढ़ती क्रूर सुबह ने बड़ी निर्ममता से कुमार दा को हमसे छीन लिया। उन्हें यूरीनरी इंफेक्शेन हो गया था, जो आहिस्ता-आहिस्ता पूरी देह में फैल गया। टाटा में हुई तकलीफदेह कीमियोथैरेपी बीमारी से मोर्चा लेने में असमर्थ सिद्ध हुई।

ठण्ड उस दिसम्बर में कुछ उखड़ी झिझकी-सी मौसम की सांकल खटखटाती विस्मय में डुबोती लोगों को रजाइयों से दूर किये हुए थी।

उस रोज बालकनी के बाहर मटमैला उतरता कोहरा था। सामने समाचार अपार्टमेंट्स की ऊंची मुंडेरों से टिके आसमान के सीने में सिर टिकाने को व्याकुल खड़े ऊंचे-ऊंचे बिन फूले गुलमोहर भी उसका सीना टटोल नहीं पा रहे थे। दिसम्बर के आरम्भ का यह पहला कोहरा था और शायद इसीलिए सारे शहर का प्रदूषण झेलता हुआ इस कदर बोझिल और मटमैला हो आया था।

उसी सुबह अवध ने एकाएक आग्रह कम चेतावनी-सी देते हुए कहा था- 'मुंबई हो आओ और कुमार दा व अम्मा को जाकर देख आओ। तुम्हारी जबरन ओढ़ी हुई व्यस्तताओं से तो तुम्हें फुर्सत मिलने से रही, बितुल!'

अवध को मैं कोई उत्तर देती ठीक उसी समय फोन की घण्टी ने गुहारा था। उस ओर मुंबई से स्नेहजा रूपवते थी। प्रख्यात हिन्दीसेवी और महाराष्ट्र विधानसभा

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

के स्पीकर रह चुके श्री मधुकर राव चौधरी की बेटी। स्नेहजा ने साधिकार आग्रह किया था- हम लोग आपको 'कुसुमांजलि स्त्री-कथा' द्वारा औरंगाबाद में 15, 16 दिसम्बर को आयोजित हो रहे अखिल भारतीय मराठी लेखिका सम्मेलन में उद्घाटन सत्र हेतु बतौर मुख्य अतिथि आमन्त्रित करना चाहते हैं चित्रा तायी। मराठी की वयोवृद्ध लेखिका कमल तायी देसाई सत्र की अध्यक्ष होंगी। हम नगर में उसी सुबह गाजे-बाजे और लेझिम नृत्य के साथ अनेक स्थानीय स्वयंसेवी संगठनों, स्कूलों और कॉलेजों के सहयोग से भव्य झांकी निकालेंगे और नगर परिक्रमा करेंगे, ताकि नगरवासी पाठक-पाठिकाएं अपने प्रिय रचनाकार को निकट से मिल-देख सकें। विद्या बाल तायी और पुष्पा भावे की भी इच्छा है कि आप इस कार्यक्रम की शोभा बढ़ायें। दोनों 14 दिसम्बर की शाम औरंगाबाद पहुंच जाएंगे। आपका एयर टिकट 14 की सुबह का यहीं से करके भिजवा दें, वापसी का भी जब आप कहें।

लेखक की झांकी! इस देश में तो देवी-देवताओं की झांकियां ही निकाली जाती हैं?

सुना अवश्य था कि महाराष्ट्र से मराठी साहित्य में प्रतिमान कायम करने वाले बुजुर्ग लेखकों की भव्य झांकी निकालकर उनका नागरिक अभिनन्दन करने की परम्परा है, लेकिन मुंबई में रहते हुए भी कभी इस अनोखे उत्सव की झलक नहीं ले पायी थी। संकोच हुआ। कहा स्नेहजा से कि मराठी में बोलने का अब मेरा अभ्यास छूट गया है।

''मराठी में थोड़ा बोलकर शेष हिन्दी में बोलिये तायी।''

''आपको आना ही है तायी, सब आपसे भेंट करना चाहते हैं।''

कहा स्नेहजा से कि घर में परामर्श करने के लिये वह मुझे दो-अढ़ाई घण्टे का समय दे। कैसा विचित्र संयोग महाराष्ट्र की माटी कैसे उद्धारक-सी आ खड़ी होती है आड़े समय।

अम्मा और कुमार दा को देखना चाहती थी...।

14 दिसम्बर की सुबह जब मैं अनेक मनोभावों में ऊभ-चूभ होती औरंगाबाद के लिए निकली तो मुझे मालूम था कि कुमार दा की तबीयत कुछ अधिक गम्भीर हो रही है और उन्हें चार रोज पहले 'रहेजा' में दाखिल किया गया है। उधर भांडुप में अम्मा थोड़ा बेहतर अनुभव कर रही हैं और अस्पताल से घर लौट आयी हैं। छोटे भाई कृष्णप्रतापसिंह ने बंगले में उनकी देखभाल के लिए नर्स रख दी है। बुजुर्गों की देखरेख का अब यही चलन चल पड़ा है।

वापसी का टिकट सीधे दिल्ली का ही निकलवा लिया था। यही सोचकर कि

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

मुंबई मेरा रुकना, अवध के स्वास्थ्य के ऊपर निर्भर करेगा। उनकी जिद का क्या। बदू शैली ने बताया कि पापा ठीक हैं। यानी मैं मुंबई रुक सकती हूं।

16 दिसम्बर वापसी की सुबह मैं जेट एयरवेज से औरंगाबाद से वाया मुंबई होते हुए दिल्ली के लिए रवाना हुई। मुंबई में मुझे ब्रेक जर्नी करनी थी। मराठी भाषा की तेजस्विनी कवयित्री अनुराधा आहरे औरंगाबाद एयरपोर्ट पर मुझे विदा करने आयी थी। एयरपोर्ट अधिकारियों ने कहा, ब्रेक जर्नी के लिए आप मुंबई में उतरकर जेट की ही चार बजे शाम की दिल्ली जाने वाली फ्लाइट का टिकट 1500 रुपये भरकर बदलवा लीजिएगा। मुंबई उतरकर वही किया। सामान एयरपोर्ट पर चार बजे वाली फ्लाइट में बुक करवा अपना बोर्डिंग कार्ड ले मैं भाण्डुप के लिए निकल पड़ी।

अम्मा के पास पहुंची तो पाया कि उनकी नर्स नाश्ता करके उनके कमरे में अंधेरा किये सो रही थी और अम्मा कराहती हुई जग रही थी।

रौबदार घर की ठकुराइन की जगह पलंग पर लेटा हुआ था एक हड्डियों का ढांचा। जिसे अम्मा कहा जा सकता था तो उस दुर्बल चेहरे पर अब तक शेष बच रहीं उन्हीं पुरानी आंखों की पनियायी बोलती चमक को अपनी जगह पा।

जब तक उनकी पीठ सहलाती रही, अम्मा लगातार हठियाती रहीं कि मैं उन्हें अपने साथ दिल्ली ले चलूं। वहां वह ठीक हो जायेगी। क्या मैं उन्हें लेने के लिए नही आयी हूं।

उतराती आंखों से उन्हें समझाती रही। तर्क देती रही। उनकी हालत यात्रा के लायक नहीं है। थोड़ी और ठीक हो जायें, तब आकर मैं उन्हें दिल्ली ले जाऊंगी।

बंगले के गेट से बाहर निकली तो लगा, अम्मा की चमकीली बोलती आंखों का पनीलापन अचानक अरब सागर के ज्वार में बदल गया है। गाड़ी तक पहुंचना मुश्किल हो रहा था। कुछ दिखाई जो नहीं दे रहा था।

रास्ते भर कुछ भी दिखाई नहीं दिया। देखना भी नहीं चाह रही थी, जबकि भाण्डुप आने पर चिर-परिचित स्थानों में आये बदलाव को बीनना और आंखों में दबे पुराने नक्शों की चिंदियां खोज-खाज उनका तालमेल बैठाना और गहराती उदासी की छाती से सिर टिका, निरन्तर स्वयं को धौंसियाना कि विकास की नींव में दीमक ढूंढने की अपनी बुरी आदत से मेरे लिए निजात पाना कितना जरूरी है...।

माहिम, 'रहेजा' पहुंची तो उस वक्त दोपहर के सवा बज रहे थे। याद करने की कोशिश की तो पाया, ठीक ही याद है। कुमार दा 'रहेजा' के नौवें माले पर कमरा नम्बर 920 में हैं।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

कमरे में उनकी प्रिय बहू गौरी उनके साथ थी। "सो नहीं रहे हैं आंटी पापा, बस आंखे मूंदे हुए हैं" चकित भाव से कहा उसने और कमरे में पड़े सोफे से उठ खड़ी हुई।

आहट पा कुमार दा ने आंखे खोलीं और मेरी और घुमायीं। जैसे मेरा आना उनकी जानकारी में था। उनके सदैव चमकने वाले ललाट पर मैंने हथेली रखी तो उन्होंने सजल हो आयी आंखे मूंद ली। मूंदे-मूंदे ही उन्होंने कहा। मैं सुन सकती थी-'ठीक रहा तो होली मैं तुम्हारे यहां दिल्ली में मनाऊंगा...अवध से , अरविन्द से (अरविन्दकुमार), पद्माजी से, नंदन से...ससुरालवालों से...सबको देखना चाहता हूं...'

"खिड़की के बाहर देखो..."

नजर उठी तो पाया कि आधी दीवार के बराबर बायीं ओर वाली कांच की विशाल खिड़की में पिघली चांदी-सा चमक रहा माहिम की खाड़ी का पानी समाया हुआ था। उसी पिघली चांदी में तैर रही थी मछुआरों की पालवाली चार-पांच नावें। दोपहर में जाल डालने समंदर में निकले हुए मछुआरे।

"अस्पताल का यह सबसें खूबसूरत महंगा कमरा बबलू (बड़े बेटे संजय) ने मेरे लिए विशेष पसन्द किया है...ये...पालवाली नावें कभी अकेला नहीं होने देतीं! हेमिंग्वे याद आते हैं...!"

"तुमने अब तक कुछ खाया नहीं है न! भूख से तुम्हारा चेहरा उतर आता है..."

गौरी ने सुन ली थी कुमार दा की बात। उसने कहा, "आंटी के लिए मैंने उनकी पसन्द का बटाटा-बड़ा मंगवा लिया है पापा! ऑर्डर दे दिया है।"

कुमार दा से छिप नहीं पाती थी चेहरे की उतरन। ओढ़ी मुस्कान के मुलम्मों को भेदती देह की अनुपस्थिति अहसासों से उस व्यक्ति को अनुपस्थित होने देती है?

विस्मय जब-तब अन्यमनस्क करता है। 'जगदम्बा बाबू गांव आ रहे हैं' के 'समर्पण' से बाहर निकल वे अब भी चेहरे के मुलम्मों को भेद उतरन की परतों की इबारतों को जाने कैसे पढ़ लेते हैं। कानों में पड़ते शब्द भी उनके ही होते हैं और आवाज भी निश्चित ही उनकी। वे शब्द कुमार जो थे!

इस सच को भी स्वीकार करना ही होगा कि कुछ सच भीतर ही अघुलनशील से घुटते रहते हैं उजागर हुए बिना। उन्हीं में एक सच यह भी है कि कुछ कहानियां स्वयं कहानियां लिखती हैं जो लिखी न जाएं तो कभी लिखी नहीं जाएंगी।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

कहानियां तो बहुत-सी अन्य कहानियों ने भी लिखी हैं, जबकि आग्रह नहीं करती वे कि उन्हें लिखा जाए और सब तक पहुंचाया जाए। संभव हुआ तो उन कहानियों द्वारा लिखी गई कहानियों को उनकी निस्संगता की परवाह न कर लिखने की कोशिश होगी मेरी। 'जगदम्बा बाबू गांव आ रहे हैं' सच मेरी वही ढिठाई है। अगर उस सच का जिक्र न करती तो शायद मैं अपने से अन्याय करती। सोचा, उसकी लिखी कहानी को आपको पढ़वा ही दूं...!

गलत तो नहीं किया मैंने!

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

द्वंद्व की चौखटें और हम!

हम कौनसी यात्रा पर निकले हुए लोग हैं...? मैं सोचती हूं इस 'वहम' में मैं भी शरीक हूं। अपने को अलग कैसे कर सकती हूं। स्वयं को अलग कर कुछ भी सोचना चालाकी होगी। नसीहतें औरों के लिए ही नहीं होती। द्वंद्वावस्था में वे स्वयं के लिए भी होती हैं और शायद सबसे पहले वे स्वयं के लिए ही होती हैं। अनसुनी उनकी कैसे की जा सकती है! अनसुनी उनकी तभी होती है जब कानों के होते हुए और शत-प्रतिशत ठीक-ठाक होते हुए अपनी श्रवणशक्ति से अपने भीतर की हम आवाजों की गुहार को सुनने से गुरेज करते हैं।

बेचैनियां कम नहीं हो रहीं। उन्हें कम करना चाहकर भी कम नहीं कर पा रही। चेतन-अवचेतन में न उनका ढीठ सफर ठिठकता है, न रुकता है। निद्रा-अनिद्रा, सक्रियता-निष्क्रियता, आवेगों-संवेगों के विचलन और संघातों के मध्य भी वे अपनी उपस्थिति बनाए हुए हैं। एक बेशक्ल तरल आभास निरंतर प्रवाहमान बाहर से भीतर, भीतर से बाहर स्वयं को धकियाता लगातार कोंचता, चेताता रहता है कि यह जान-समझ लेना बहुत जरूरी है कि हमारे हाथ से उन सिरों को पकड़ने और पकड़कर किसी कोने में खामोश बैठे देने के लिए कोई ऐसा स्विच नहीं है, जिसे ऑन-ऑफ कर हम जब चाहे उसकी उपस्थिति से मुक्त हो लें।

सोच में यह तर्क भी सुगबुगाता रहता है, बेचैनियां लगातार हमारा ही पीछा क्यों करती रहती हैं?

क्यों, मुड़-मुड़कर अपनी ओर देखने के लिए विवश करती रहती हैं कि हम अपनी मिट्टी स्वयं रह-रहकर खुरचने को बाध्य होने लगते हैं? अनचाहे! अपने क्षरण के गवाह बनने को मजबूर होते।

बेचैनियों ने ही एक मुठभेड़ में हमें बताया कि उसका और हमारा रिश्ता क्या है, कैसा है और है, तो क्यों है। वे ऐसे ही नहीं चली आतीं हमारे पास। हमारा संवेदन, हमारी जगहट जाने-अनजाने हमारे चेतन-अवचेतन में स्वत: उन्हें आमंत्रित

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

कर ठियां-ठिकाना सौंपती रहती है कि तुम आओ निःसंकोच यहां अपना डेरा डाल लो। यह शब्दकर्मी का वजूद है। तुम यहां रह सकती हो। वह तुम्हारे क्षत-विक्षत होने से स्वयं घायल हो उठता है और तुम्हारी अनमनाहट से उचाट।

क्या यह सच है? और अगर यह सच है तो शब्दकर्मी का वजूद क्या अपने होने की परिभाषा से सामना कर रहा है? क्या उन्हें महसूस हो रहा है कि बेचैनियों की ये अनवरत शमित न होने वाली अन्तर्यात्राएं निरुद्देश्य नहीं होती! उसकी कुछ अपेक्षाएं होती हैं उनसे! कुछ गहरे भरोसे हैं जो उन्हें शब्दों ने सौंपे हैं, संतरण करते समय साथ कि वे जो कुछ उनसे कहने-सुनने आयी हैं, सही जगह आयीं है। उसकी सुनवाई यहीं होगी और केवल यहीं होगी।

उसकी उठी हुई उंगली के कटघरे से बाहर होना मेरे लिए भी संभव नहीं है। मैं फिर-फिर सोच रही हूं।

आज शब्दकर्मी के सामने सबसे अहम् प्रश्न है कि क्या वह अपने समकालीन समाज के संक्रमणों से मुठभेड़ करने का खतरा उठा रहा है? उन छिपे खतरों के भयावह और लगभग विनष्ट कर देने वाले दूरगामी परिणामों को टोहने-सूंघने का उपक्रम कर रहा है। आखिर वे व्यक्त-अन्यक्त खतरे क्या हैं, क्यों होना चाहिए, क्यों नहीं होना चाहिए, वे किन बीजों और खादों की उपज हैं और हम उनकी फसलें काटने के लिए अभिशप्त हैं। उसकी बेचैनी होकर भी वे उन्हें नहीं पहचान रहे तो क्यों? या पहचान कर भी उन्हें देखा-अनदेखा कर वादों और खेमों की छतरियों के नीचे सुरक्षित, सीमित, उखाड़-पछाड़, श्रेष्ठ-अश्रेष्ठ, प्रतिबद्ध-अप्रतिबद्ध की क्षुद्र राजनीति में उलझे हुए, वर्चस्ववाद के पैंतरे मांजते, एक-दूसरे को नीचा दिखाने में अपनी समूची सृजनात्मक ऊर्जा नष्ट कर रहे हैं। उनकी चिंता में आमजन कितना और कहां तक रह गया है, सोचते ही बेचैनियां आंखों में उंगलियां डालने लगती हैं कि हमने उनके लिए कुछ किया है तो मात्र इतना भर कि उन्हें वैचारिक उल्टियों, चश्मे से बंधी-रची कृतियों, पोस्टरों, नुक्कड़ नाटकों, चौंधियाहट से लदे-फदे नारों में कैद कर उन्हें उनकी जमीन से बेदखल कर इस्तेमाल की छद्म हित-चिंतक राजनीति का मोहरा बना डाला है। कलम के इस अविश्वसनीय उपभोक्तावाद को हम किस खांचे में डालेंगे!

क्या नाम देंगे इसे!

ज़ाहिर है कि हम अभिव्यक्ति में खालिस व्यक्तिवादी रवैये के अनुगामी होकर सामाजिक सरोकारों के प्रति शब्द-शक्ति प्रज्वलित नहीं कर सकते।

बेचैनियों की सामूहिक चेतना का आधार बनाना होगा।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

शब्दकर्मी को अपने वजूद की परिभाषा से टकराना होगा।

कलम की दरौंती को छद्म के पाश से मुक्त करना होगा, ताकि मारक ख्वाबों की चहुंतरफा मार से त्रस्त-ध्वस्त लगभग जड़ावस्था में पहुंच रहे जनमानस की गुलामी की हदें छूती सहिष्णुता को अभिव्यक्ति की तीव्रता दरका सके। उन्हें उनका सही पाठ सौंप सके। लो पढ़ो अपने को ताकि उनमें अपेक्षित आंच-ताप जग सके। जान सके कि वे ऐसा होना उनकी नियति नहीं है; न ही निरपेक्षता उसका समाधान।

तब हमारे वश में है तो केवल इतना भर कि अगर हम शब्दकर्मी के खोल में शब्दकर्मी हैं तो हम उन बेचैनियों को सामूहिक चेतना में कायाकल्प करें, जिससे हमने स्वयं को वंचित कर रखा है।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

पहाड़ा रटती उम्र और अम्मा

अम्मा बताती हैं, बचपन में तुम बहुत जिज्ञासु बच्ची थी। अस्थिर। एक जगह टिककर न बैठने वाली।

तुमसे मिलना, तुम्हें प्यार करना सभी को अच्छा लगता था। मुसीबत कुछ और ही थी। तुम चुप नहीं बैठ सकती थी। ''यह क्या है, क्यूं है, कैसे है?'' सवाल दर सवाल कि तुम्हें बच्चा समझकर लड़ियाने वाला हैरान हो खीझ उठता कि हर चीज को जानने-समझने की जिद क्यों होती है तुम्हारी। टहल में उलझा कौन समझाये तसल्ली से तुम्हें कि इस-उस के ककहरे की आखिर में असल तस्वीर है क्या!

अम्मा बताती हैं तो बात उनकी झूठी कैसे हो सकती है। कन्या पाठशाला भरतीपुर में तुम अपनी कक्षा में पहाड़ा रटने में सदैव अव्वल रहतीं थीं। गणित के नतीजे में फुस्स। तुम पूछती थीं, हमें कैसे मालूम? हमें मालूम हुआ था तुम्हारी बड़ी अध्यापिकाजी से। बताया उन्होंने-पहाड़े तो पूरी कक्षा को रटाये जाते हैं दुलहिन! अकेले सुनाने की कहने पर ज्यादातर बच्चे बीच में गलती करते हैं या शुरू करते ही भूल-भाल जाते हैं। यह नहीं भूलती। जाने गणित ठीक से हल क्यों नहीं कर पाती। काम-काज से निरताकर तनिक बैठा लिया करो अपने पास।

अगले रोज से हमने तुम्हें अपने पास बैठाना शुरू कर दिया।

तुमने औचक पूछा था एक दिन, तुम पहाड़ा मेरे साथ क्यों नहीं रट सकतीं अम्मा? मेरे साथ-साथ पढ़ो न।

''हम बहुरिया हैं इस घर की। बहुरिया पहाड़ा नहीं पढ़ सकती।''

''नानाजी के घर में पढ़ सकीं थीं!''

''वहां भी नहीं पढ़ सकते थे।''

''क्यों?''

''पहाड़ा स्कूल में ही पढ़ा जा सकता है मोरी छौनी।''

''हम तो घर में पढ़ते हैं अम्मा!''

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

''हमने कल तुमको कहा था न कि पहाड़ा धीमी आवाज में पढ़ा करो। तुम्हारी आजी टोक चुकी हैं हमको। बच्ची की आवाज दहलीज से बाहर जाने न पाए।''

''तुम्हारी ढिठाई तो देखो, तुमने पहाड़ा भरपूर ऊंची आवाज में पढ़ना शुरू कर दिया था एकाएक और पूरा घर इकट्ठा हो गया था आंगन में।''

''एक साथ कई बड़ों के हाथ उठते-उठते ठिठक गए थे तुम्हारे ऊपर। इस घटना के चौथे रोज बड़ी अध्यापिका जी ने घर आकर हमसे मुलाकात की थी और प्रसन्न होकर बताया था कि-तुम्हारी बिटिया की गणित अब अच्छी हो गई है। अपने पास पढ़ाई के लिए बैठाती रहा करो। अव्वल आया करेगी कक्षा में...।''

अम्मा, एक और किस्सा सुनाती हैं। गांव वाले घर में बहुत बड़ा तल बना हुआ था। तुमने न जाने कब और कैसे उस तलघर को देख लिया। रटने लगीं पहाड़ा। ऊंची आवाज में। हम डर गए। कौन देगा तुम्हारे सवालों का जवाब?

तंग आकर हमने तुम्हें तुम्हारी आजी के पास भेज दिया। समझा-बुझाकर कि आजी हमसे बड़ी हैं। इस बरवरी में वे हमसे पहले विदा होकर आयी हैं। लेकिन आजी तुम्हें संतुष्ट नहीं कर पायीं कि तलघर तुम्हारे पड़बाबा ने गर्मियों में सोने के लिए बनवाया था ताकि तपती जेठ की दुपहरी में ठंडे में घर की मेहरिया-बिटिया चैन की नींद सो सकें। सोने के लिए बनवाया गया था तो फिर उसमें कोई सोता क्यों नहीं? न उसमें कोई झरोखा है, न रोशनदान। हफ्ते भर भी कोई भूल से वहां बंद रह जाए तो जिंदा बच पाएगा? आजी के पास तुम्हारे इन तर्कों का कोई जवाब नहीं था।

अम्मा ने बताया कि तुम थोड़ी बड़ी हो गई थीं। निर्भीक हो दुआरे बने बंगले में अपने बाबाजी के पास पहुंच गयी थीं और दस-पंद्रह मिनट बाद ही रोती हुई आंगन में दाखिल हुई थीं। ठीक तुम्हारे पीछे आंगन में तुम्हारे बाबाजी भी दाखिल हुए थे। दहाड़ते हुए उन्होंने तुम्हारी आजी से पूछा था-''कोटवा वाली, इस बच्ची को तलघर की राह किसने दिखाई?''

अम्मा बताती हैं कि घर की सारी दुलहिनों को खमसारों के खम्भों के पीछे खड़ा कर दिया गया था उत्तर पाने के लिए।

उत्तर में भय से कांपते उनके सफेद पड़े चेहरे घूंघट की आड़ में पिघल रही बर्फ से चूने लगे थे और उनके मुंह से घुटी-घुटी-सी चीखें सिसकारी बनकर फूट रही थीं। बाबाजी गरज रहे थे कि इस बच्ची ने जो सवाल मुझसे किया है, आगंतुकों से भी कर सकती है। खयाल रहे, आइंदा ऐसी कोई गलती हुई, तो एक-एक की खाल उधेड़ उसी तलघर में फिंकवा दूंगा।

समझा देना दुलहिनों को अपनी कोटवा वाली।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

अम्मा बताती हैं, बौखलाये हुए बाबाजी के देहरी लांघ बाहर निकलते ही उन्होंने आंगन में मुझे पटक-पटककर कूटा था। आखिर इस घर में बच्चे और भी हैं। एक तुझे ही काहे पड़ी रहती है बाल की खाल निकालने की? घर में दस ठो कुआं-बावड़ी हों, हों तो हों; तुझे क्या? काहे नहीं औरों की तरह मुंह चिपाये पाटी बस्ता खोल पढ़ती-खेलती रहतीं?

अम्मा बताती हैं कि बुरी तरह पिटने के बावजूद हिचकियां बांधते हुए तुमने हमसे सवाल किया था-''तुम काहे रो रही हो अम्मा! पहाड़ा क्या सिर्फ रटनेभर के लिए होता है, गणित हल करने के लिए नहीं होता है।'' ...और तुम्हारा सवाल सुन हमने खींचकर तुम्हें अपनी छाती से चिपका लिया था। यह सवाल करने वाली तुम हमारी बच्ची नहीं, बल्कि हमारी बच्ची के रूप में बचपन की हमारी गुइयां फूल कुंवर हो, जो अक्सर मेरी पीड़ा से द्रवित हो अपनी धोती से हमारे आंसू पोंछने खड़ी हो जाती थी...।

अम्मा ने यह भी बताया कि बढ़ती हुई उम्र के साथ-साथ तुम्हारे सवाल बढ़ते ही गए थे और एक रोज तुमने लिखकर सवाल पूछने शुरू कर दिए। अब तुम अपने पाठकों को घेरकर उनसे सवाल पर सवाल करती हो और उनसे पहाड़ा रटने वाली जैसी ही ऊंची आवाज में पूछती हो कि उन सवालों का है कोई जवाब उनके पास?

अम्मा कहती हैं तो अपने लिए मैं इसे सच मान लेती हूं।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

अक्सर जीवित पात्र कल्पना को पंख देते हैं

कभी-कभी ऐसा होता है कि डोलती-फिरती जहां जिन बस्तियों में मैं काम करती हूं वहां तो पात्र ही पात्र बिखरे होते हैं। जीवित पात्र, जीवित मानने को विवश करते हुए से मुर्दा पात्र और ये समझ में नहीं आता है कि जो पात्र सामने दिखाई दे रहे हैं, उनमें से कुछ मेरी रचना के भी पात्र बन सकते हैं क्या? वे सारे पात्र अभाव से लड़ते हुए, नैराश्य से भरे हुए, जिन्हें आशा की कोई क्षीण किरण दूर-दूर तक दिखाई नहीं देती। चरित्रों के नैराश्य के घटाटोप में दाखिल होकर मैं भी उनके साथ कोई आशा की किरण ढूंढने लगती हूं। ढूंढ-ढूंढकर थक जाती हूं, हताशा के सिवा कुछ भी हाथ नहीं लगता। अनायास उस सच को उन्हीं के साथ टोह पाती हूं। ऐसी मन:स्थिति में मैं राह टटोलते हाथों को कल्पना की जादुई उड़ानों के पंख सौंप झूठ का वितान रचती हूं। उस वितान में उन्हें शामिल होने के लिए आमंत्रित करती हूं। उन्हें विश्वास दिलाती हूं कि उनका सब-कुछ खत्म हो गया है, यह सच नहीं है।

षड्यंत्रों के हाथ बहुत लंबे हैं। षड्यंत्रकारी बहुत समर्थ हैं। षड्यंत्रकारी का वर्ग, रूप, चेहरा कोई भी हो सकता है। कैसा भी हो सकता है। चेहरा बदल लेने में भी वह माहिर है। उसके चेहरे के पलों में बदल देने वाले सर्जन उसकी मुट्ठी के बंदी हैं। तब लगने लगता है समाधान हस्तगत हो न हो, षड्यंत्र को उजागर करना जरूरी है, षड्यंत्र उजागर होना जारी है। षड्यंत्र को जान-समझ लेना और उसे बेपई करना ही वह जीत होती है जिसकी उपलब्धि शत्रु को ढूंढ लेने की उपलब्धि है। लड़ना किससे है यह सच भी वही उपलब्धि सौंपती है।

तब्दीली आने में थोड़ा-बहुत वक्त लग सकता है। पाती हूं कि जो झूठ मैं कल्पना में रचती हूं, वह उनके लिए आशा की किरण बन जाता है। उनका संघर्ष स्थल बन। ऐसा नहीं है कि वह कल्पना कभी यथार्थ में नहीं होती। सच तो यह है कि यथार्थ और कल्पना किन्हीं अर्थों में सर्जना में एक-दूसरे के पूरक हैं।

मेरे चारों ओर वास्तविक और काल्पनिक पात्र मेरे विषय का हिस्सा हो सकते

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu
हैं या मैं उन्हें अपने विषय का हिस्सा बना सकती हूं। स्वयं भी एक पात्र बनकर। परकाया प्रवेश कर, लेकिन स्वयं को पात्र के रूप में ढालने के लिए मुझे कल्पना का सहारा लेना पड़ता है। यह एक तीसरी स्थिति है। कभी-कभी यह भी होता है कि संघर्ष में जो टूटन है, उसके प्रति जो उनकी प्रतिक्रिया होती है, उनके सामने तो मैं यह जाहिर नहीं करती हूं कि उनकी वैसी प्रतिक्रिया मेरी भी प्रतिक्रिया बन रही है और कहीं मैं भी निराशा के गर्त में ऊभ-चूभ हो रही हूं। दरअसल मोर्चे पर सन्नद्ध होने के लिए बाहर होना अनिवार्य है।

समाज में कुछ भी बदल नहीं रहा है, लेकिन बदल नहीं सकता, ऐसा सोचना पाप करने जैसा महसूस होता है। अनीति, भ्रष्टाचार-अनाचार अपने रूप नित बदल रहे हैं। भीतर फांस टीसती है। भले ही मैं उस पात्र की छटपटाहट से मुक्त हो चुकी होती हूं। किसी अन्य पात्र के भीतर दाखिल होने की प्रक्रिया में होती हूं, किंतु संघर्ष से निस्संग होना संभव नहीं होता।

कहा जाता है कि आमतौर पर लेखक अपनी कल्पना से पात्रों को गढ़ता है, लेकिन मुझे लगता है कि जीते-जागते पात्र जिनसे मैं मिलती हूं वे मेरी कल्पना को निर्मित करते हैं। मेरी कल्पना की प्राण-प्रतिष्ठा कर देते हैं और फिर वह कई लोगों के अनुभवों से पुष्ट होती हुई, उस पात्र में समाहित हो जाती है। वह कहीं न कहीं मेरी रचना का चरित्र बनता है और इसीलिए उस चरित्र का संघर्ष रचना को आम लोगों से जोड़ देता है और जब आम पाठक उसे पढ़ता है तो कहीं न कहीं किसी न किसी रूप में उस चरित्र का, उस पात्र का संघर्ष स्वयं उनका संघर्ष हो उठता है। अतः मेरे पात्र जो हैं, वे कोरी कल्पना की उपज नहीं होते हैं, बल्कि कोई न कोई जटिल स्थिति अपने अनुरूप पात्र का सृजन करती है या कोई न कोई पात्र अपने संघर्ष के माध्यम से उन जटिल स्थितियों को निर्मित करता है।

एनसीईआरटी के एक प्रोजेक्ट के सिलसिले में मैं नाहन (हिमाचल प्रदेश) गई थी। विद्वान विशेषज्ञों के साथ फासल्स पार्क देखने गई थी। वहां मेरी मुलाकात अचानक 'गिलिगडु' उपन्यास के केन्द्रीय चरित्र कर्नल स्वामी से हुई थी, जो मुझे फासल्स पार्क की विशेषताएं बताते-बताते अनायास अपनी ज़िंदगी के पृष्ठ खोलने लगे, लेकिन बहुत अरसे बाद जब मैं बेंगलूरु उनके घर मिलने गई तो मुझे वहां उनके घर में चिड़ियों की चहचहाहट से भरा वह बरगद नदारद मिला और कर्नल स्वामी मेरे अनापेक्षित आगमन से बौराये नजर आए। लौटी तो लगा कि कर्नल स्वामी बेंगलूरु में पीछे नहीं छूटे, बल्कि मेरे साथ-साथ हमेशा के लिए हो लिए। उनसे

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

अलग होने के बाद उनके भरे-पूरे परिवार की कल्पना कर मैं खुश और संतुष्ट होती रही।

उनके माध्यम से वर्तमान समाज के असंख्य अवकाश प्राप्त लोगों के जीवन और उनके रूप में उन असंख्य अवकाश प्राप्त उपेक्षित बूढ़ों के प्रतिरूपों को समाहित किया। ठीक उसी तरह जैसे कुम्हार बर्तन की गढ़न में आवश्यक मिट्टी को थपथपाकर उसके आकार को मुकम्मल करता है। बहुत जटिल थी यह प्रक्रिया। कभी-कभी लगता था कि जहां मिट्टी लगाने की जरूरत है, मेरी अंगुलियां उसके आकार को सही अनुपात में दबाव नहीं दे पा रही हैं और उसका आकार यत्र-तत्र पिचक रहा है।

'आवां' की नमिता को लेकर भी कई समीक्षकों ने ये बात लिखी और मुझसे कही कि मजदूर की बेटी नमिता जो 'आवां' की मुख्य पात्र है, वह दैहिक उत्पीड़न के प्रति मुखर हो आवाज क्यों नहीं उठाती? उनके इस प्रश्न के संदर्भ में मुझे सदैव यही लगता है कि शायद मैंने नमिता को अपने अनुभवों से सीखने के लिए एक स्पेस मुहैया करवाया है कि अपने संघर्षों की चोटों से वह सुनिश्चित करे कि उसका प्रतिवाद क्या और कैसा होना चाहिए? चुप रहकर दैहिक उत्पीड़न के विरोध में वह खामोशी से अपने को ट्रेड यूनियन की नौकरी से अलग कर लेती है, जबकि वह जानती है कि 11 सौ रुपये की नौकरी उसके अभावग्रस्त घर के लिए कितनी जरूरी है। यह उत्पीड़न के खिलाफ उसका मौन प्रतिवाद है, जो कहीं आगे जाकर उसे रेड कारपेट के मोह से मुक्त कर वापस ट्रेड यूनियन में आने के लिए प्रेरित करता है और वह लौटती है उन्हीं झोंपड़ पट्टियों में। 'आवां' में नमिता का अभावग्रस्त लोगों के बीच लौटना और स्वयं भी उसी स्थिति में चलने की चुनौती को स्वीकार करना मेरे जेहन में नमिता को छटकने नहीं देता।

पात्र अगर लेखक का प्रतिरूप होगा तो रचना के आत्मकथात्मकता के इर्द-गिर्द बने रहने का बहुत बड़ा खतरा होगा। वह मात्र निजी अनुभवों की दोहराहट तक सीमित होकर रह जाएगी। आत्मकथा एक ही बार लिखी जाती है, बार-बार नहीं। हां, यह बात मैं कई बार दुहरा चुकी हूं कि लेखक अपनी रचना में अपनी चेतना दृष्टि के रूप में अवश्य उपस्थित होता है और इस भांति लेखक अपने पात्रों में होता ही है। किसी न किसी रूप में।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

मेरी दुनिया, मेरा लेखन

समझ से रिश्ता कायम होते ही विरासत में मिली जिस दुनिया को उसने अपनी कौतूहलभरी आंखों से देखना और महसूसना शुरू किया था, उसी समय से उसे इतना तो समझ में आने लगा था कि खुली आंखों से एक जैसी दिखती दुनिया वास्तव में एक जैसी नहीं होती। एक जैसी क्यों नहीं होती? जिज्ञासा प्रकट करते ही उसे होंठों पर उंगली रखकर घुड़की मेरे स्वर में समझाया गया था, वह गांव, जवार में अपनी बुलंद हैसियत के लिए जाने जाने वाले, एक जमींदार ठाकुर खानदान की पोती है और इस विषय में उसे अधिक सोचने की जरूरत नहीं है। यह उसके खेलने खाने के दिन हैं, मजे से खेले-खाये। गांव की अन्य लड़कियों से उसका गुंइयापना वहीं तक रहे, जितना कि पाठशाला में साथ पढ़ने वाले सहपाठियों के बीच अमूमन हुआ करता है।

वर्जनाओं के घटाटोप में घिरे हुए उसे यह भी अनुमान हो गया था कि उसकी दुनिया दो भागों में बंटी हुई है। जनाना और मर्दाना! कुछ ही दिनों बाद उसे यह भी अहसास हुआ कि उसे विरासत में मिली दुनिया केवल दो भागों में ही बंटी हुई नहीं है। उन दो दुनियाओं के बीच एक तीसरी दुनिया भी मौजूद है। संपन्न और विपन्न की दुनिया! किस्म-किस्म की दुनियाओं के बीच खड़ी हुई वह चौंधियायी हुई-सी सोचने लगती-इस सबके बीच उसकी अपनी दुनिया कौनसी है? कहां है?

उनके बीच जो दीवाली की रात अपनी जंग खाए अस्त्र-शस्त्रों की पूजा कर, अपनी भावी पीढ़ी को अपने क्षत्रिय होने का दंभ और आडम्बर, यह कहकर सौंपने की चेष्टा करते हैं कि वह अपने बाहुबल से दुनिया की रक्षा करने वाले लोगों में से हैं और आज भी वे उसी गौरव के अधिकारी हैं और उसी में जीना और मरना पसंद करते हैं।

उसने सोचा था और लगातार सोचती रही थी, अन्याय से रक्षा करने वाले अन्यायी कैसे हो सकते हैं?

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

अंधेरों से घिरी हुई वह बबूल के तीखे नुकीले कांटों से भरे हुए दु:स्वप्नों के बीच अपने अस्तित्व को टटोलने, पाने और हल करने की कोशिश में लग गई थी।

देहरी के भीतर रोशनी और हवा से उपेक्षित विरासत में मिली बंद मुट्ठी जितनी दुनिया उसकी दुनिया नहीं हो सकती थी। उसे अपनी दुनिया को स्वयं जन्मना होगा। उसने दृढ़ता से सोचा था। सोचा था, उसके पास एक अदद कोख है। वह अपने वक्त का भ्रूण स्वयं अपनी कोख में धारण करेगी। उसने वही किया।

कागज और कलम अपने हाथों में देखकर अक्सर वह अचरज से भर उठती है।

ढेर से कोरे कागज पैड पर लगाए उसकी बगल में कलम रखे हुए वह कागजों की सफेदी को घूरा करती है।

कागजों की कोई दुनिया होती है...!

होती है। उसे लगता है कि कागजों ने ही तो उसे अपनी दुनिया सौंपी है! अब तक तो वह उस दुनिया में रह रही थी जो उसके लिए बनी ही नहीं थी।

पन्ने जब भी फड़फड़ाते हैं, निस्तब्ध रात्रि में डनलप में धंसी सुख स्वप्न देखती नींदों को, खाली पेटों की कराहों से कुरेद-कुरेदकर उठ बैठने के लिए मजबूर कर देते हैं।

लड़ने पर आमादा हो आते हैं हाशिए पर कर दिए गए उन लोगों के युद्ध, जो वह स्वयं लड़ पाने में असक्षम थे।

उसके अपने हिस्से के युद्ध को भी उनकी फड़फड़ाहट ने आगे बढ़कर अपने कंधों पर ले लिया हैं, देहरी तक सीमित उसकी दुनिया को मुक्त करने के लिए...।

...मगर यह भी सच है कि एक समय उसकी दुनिया कागजों से नहीं कैनवास से शुरू होना चाहती थी। वह सोचती थी कैनवास के किस सिरे पर वह कूची की कुदाल से अपनी इमारत की नींव खोदना आरंभ करेगी। जिसकी गहराई में उसकी अपनी इमारत की चिनाई शुरू होगी। उस इमारत की खिड़कियां और रोशनदान उन सभी दिशाओं की ओर खुलते होंगे, जहां अपने-अपने कैनवास में अपनी दुनिया को अर्जित करने का संघर्ष जीता हुआ प्रत्येक आमजन अपनी इमारत की नींव अपने हाथों भर रहा होगा।

पता नहीं। हाथ में आया हुआ कैनवास, कूची कब, कहां, कैसे छूट गया। हाथ में आ गया वह कागज, जिसे उसने अपने गांव निहालीखेड़ा (उन्नाव) वाले घर की चौके वाली खमसार के बाहर वाले चूल्हे के ऊपर बने आले में रखी लालटेन की रोशनी में अपने बप्पा को चिट्ठी लिखने के लिए स्कूल की कॉपी से फाड़ा था....।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

वही पन्ना धीरे-धीरे कागजों का पुलिंदा बन उसकी दुनिया में परिवर्तित होने लगा था।

''किसके साथ रहना है तुम्हें? अपनी अम्मा के साथ या मेरे साथ?'' उससे सवाल किया गया था।

बंबई का वह बोरीबंदर स्टेशन था, प्लेटफार्म नम्बर नौ। पंजाब मेल से वे गांव के लिए रवाना हो रहे थे। प्रथम श्रेणी के कूपे में माथे तक घूंघट काढ़े बैठी अम्मा सिसकियां भर रही थीं। उनकी बगल में बैठे थे उसके बड़े भाई और उनकी बगल में बैठी हुई थी डेढ़ साल की छोटी बहन केशा। भाई चुप। छोटी बहन की आंखों में अबोध सहमापन। डिब्बे से बाहर वह बप्पा से सटी खड़ी हुई थी। उन लोगों से कुछ दूर भीड़ की गहमागहमी में उलझे हुए या स्वयं को उलझाये हुए से खड़े हुए थे, छह फीट के भव्य गौरवर्ण व्यक्तित्व के धनी उसके डॉ. बाबा।

प्रश्न सुन उसकी छह साल की मासूम उम्र अचकचा उठी थी। इस प्रश्न का क्या उत्तर हो सकता था?

'दोनों के साथ।' चतुराई से उसने जवाब दिया था।

तभी गाड़ी ने सीटी देकर चलने के संकेत दिए। गाड़ी में चढ़ बाबा ने फुर्ती से बप्पा से अलग कर उसे ऊपर खींच लिया था।

आगे बढ़कर बप्पा ने अबोले ही बाबा के पांव छुए थे। उसका सिर नवाकर माथे को चूमा था और उसकी डबडबा रही आंखों के सामने से ओझल हो भीड़ का हिस्सा हो गए थे।

तनाव से तपा चेहरा लिए बाबा ने कूपे का दरवाजा बंद कर लिया था।

अम्मा अब भी घूंघट में सिसक रही थीं। उसे समझ में नहीं आ रहा था कि अचानक बीच में स्कूल छोड़कर सब बाबा के संग गांव क्यों जा रहे हैं?

बहुत छोटे में गांव गई थी। गांव कैसा होगा उसे याद नहीं था। बप्पा से उसने पूछा था। उन्होंने बताया था- गांव में खूब सारी गाय, भैंसें हैं। कलमी और दशहरी आम के बड़े-बड़े बगीचे हैं। गंगा का किनारा कोस भर है। बप्पा दूध दुहना जानते हैं। जब वह उनके संग गांव चलेगी, वह उसे दूध दुह-दुह कर दिखायेंगे। हाथी पर बैठाकर उसे तकिया के मेले में ले जाएंगे। चकते वाले घोड़े पर बैठाकर कटरी का जंगल घुमाएंगे। जिस पर बैठकर अपने बाल सखा ठाकुर गुलाबसिंह के साथ अक्सर वह कटरी के जंगलों में शिकार खेलने जाया करते थे। वह उदास हो आयी और अधिक। बप्पा के बिना वह गांव जा रही है, जाने बाबा उसे वह सब दिखाएंगे भी या नहीं!

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

...हां, यही वह भरतीपुर का गलियारा है, जो उसकी कन्या पाठशाला की बगल से निकलता हुआ उस ओर मुड़ जाता है, जहां सगवर की शुरुआत होती है। उसी शुरुआत पर लड़कों का मदरसा है। उसकी पाठशाला के सामने सिंघाड़ों की बेलों से आच्छादित विशाल तालाब है। तालाब के किनारे धोबियों के कपड़े धोने के पत्थर गड़े हुए हैं। पाठशाला के साथ सटा हुआ शिवाला है। उसी के सामने पीपल के पेड़ की छांह तले पंडितजी बैठे रहते हैं। खाने की छुट्टी के समय पाठशाला की विद्यार्थियों को दो-दो पैसे में बैंगनी, कचालू और गुड़ की मुरमुरी सी मिठाई का पत्ता बेंचते हैं। उसको यह पाठशाला अजीब लगती है। धूल और मिट्टी से भरे फर्श पर टाट की पट्टियां बिछी हुई हैं। बच्चियां उसी पर बैठकर पढ़ती हैं। प्रधान अध्यापिका जी कभी-कभार ही उन्हें पढ़ाने आती हैं। प्यारी-सी मगर सख्त मनोरमा बहनजी, उन लोगों को समवेत स्वर में गिनती रटवाती हैं। बच्ची कक्षा में सहमी हुई सी सोचती है- यह कन्या पाठशाला वैसी क्यों नहीं है, जैसा कि विलेपार्ले बंबई में उसका कई माले वाला सुंदर-सा स्कूल था?

बंबई में स्कूल ही अच्छा नहीं था, खपरैलों वाला उसका विशाल बंगला भी कुछ विचित्र और लुभावना था। बड़े-बड़े हॉलनुमा कमरे थे उसके। आगे रेलिंग लगा हुआ खूब चौड़ा बरामदा! चारों ओर खूब खुला अहाता। हॉल की छत से लगी धन्नी की शक्ल में नक्काशीदार शहतीर के ऊपर बैठे हुए कबूतरों के जोड़े 'गुटरगूं-गुटरगूं' किया करते। अबोध और विस्मित दृष्टि से वह कबूतरों को देखा करती। कई दफे उसने मेज पर चढ़कर उस ऊंचाई तक पहुंचने की कोशिश की ताकि वह उन कबूतरों के कोटरों तक पहुंच सके और उन्हें करीब से देख-छू सके। भले ही वह उसके हाथ बढ़ाते ही फड़फड़ाकर उड़ जायें। कम से कम उसे इस बात की तो खुशी होगी कि वह कोशिश कर उनके करीब तक पहुंच सकी।

...लेकिन वे उससे छूट गए। पाठशाला की बगल में पीपल के उस सघन वृक्ष पर उसे वैसे कबूतर नहीं दिखे। दिखे भी तो उसे वैसे गर्दन मटका और आंखें चमका कर गुटुरियाते हुए नहीं मिले, जैसे विलेपार्ले वाले उस विशाल बंगले की नक्काशीदार शहतीर पर बैठे हुए मिलते थे।

कागजों के पन्ने अब उसके आसपास घूमती हुई तकली से घूमने लगे हैं...।

भुसौरे से रामसेवक बारी के छोटे-बड़े भीखू ने एक बोरी गेहूं चुरा लिया है।

उसकी चोरी पकड़ी गयी है।

दुआर के विशाल सघन नीम के तने से उसे बांध दिया गया है।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

बड़े बप्पा हाथ में हंटर लहराते हुए अपने बंगले से बाहर निकलते हैं। उनका कोड़ा तने से बंधी मीखू की देह पर लपलपाने लगता है। उसकी सांवली चमकती देह हाथ की पकड़ से छूटे तरबूज सी भसकने लगती है। खून की लकीरें छलछला रही हैं-'सड़ाक्-सड़ाक्'...।

घर के कुन्दे जड़े विशाल दरवाजे की सांध से सटी कई जोड़ी आंखों के संग आंखें गड़ाये, उसकी आंखें भी यह दर्दनाक दृश्य देख रही हैं। फटी-सी।

बारी काका और बारिन काकी बड़े बप्पा के पांवों में लोट रहे हैं-''क्षमा करिये मालिक...तुम्हारी परजा है...बहिकगा है भिखुआ...एक मौका दै देव...अब जो मुट्ठी भर भूसिव हियां से हुआं कीन्हिस तो दहिजार के खाल खींचि के मूसा भरिदीन्हेऊ मालिक!'' बारिन काकी, बड़ी बिटिया गतिन और छोटी बिटिया विटान भी भाई के आर्तनादों के सुर में सुर मिला कलपती हुई बड़े बप्पा के हाथ-पांव जोड़ रही हैं, लेकिन बड़े बप्पा का हाथ तब तक नहीं रुकता जब तक वह स्वयं थककर चूर नहीं हो जाते।

भीखू की अचेत बंधी देह पर उसकी गर्दन एक ओर लुढ़क गयी है। बच्ची दहशत से कांपने लगती है।

खुसफुसाहटें उसके इर्द-गिर्द मंडरा रही हैं। एक बोरी गेहूं चुराने भर तक बात सीमित होती तो बड़े बप्पा इतने जल्लाद नहीं हैं कि उत्पाती मिखुआ को क्षमा न कर देते। बड़े बप्पा के पास पक्की खबर है कि पिछले महीने अहरेअरा में जो फलाने सिंह के यहां डकैती पड़ी थी, उसमें भीखू का भी हाथ था।

बच्ची सोचती है। एक बोरी गेहूं के पीछे इतने कोड़े! कोई डकैतों में शामिल नहीं होगा तो क्या करेगा?

बारिन काकी आंखें पोंछती हुई आजी से हल्दी की गांठ मांग कर ले जा रही हैं। आजी ने उनकी मुट्ठी में कुछ नोट भी चांप दिए हैं।

वह यह भी देख रही है। ठीक घंटे भर बाद झक्क् सफेद धोती-कुर्ता पहने बड़े बप्पा पुरवा के अपने डॉक्टर मित्र के साथ, हाथी पर सवार हो पुरवा रवाना हो गए। कुछ हुआ ही न हो जैसे!

बच्ची स्तब्ध है। उसे याद है। पीड़ा से छटपटा रहे मीखू की मर्मांतक हालत देखकर उसके मन में आया था, बड़े बप्पा के हाथ से उनका कोड़ा लपक वह उन पर तब तक बरसाती रहे, जब तक भीखू की भांति उनकी गर्दन पर उनका सिर अचेत हो लुढ़क न जाए!

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

उसने निश्चय किया था, वह अपने बप्पा को पत्र लिखेगी। अपनी टूटी-फूटी भाषा में। वह उनके पास क्यों नहीं रह सकते? यहां गांव में क्यों छोड़ दिया है उन्होंने उन लोगों को? लोग कहते हैं- बाबू ने बंबई में किसी को रख लिया है! उसे उनकी याद आ रही है। गांव आकर वह उन्हें ले जाएं। बड़े बप्पा उसे राक्षस लगते हैं, डर लगता है उसे उनसे।

गर्मियों के तपते दिन थे। आंगन में पड़ी खटियों पर जन पियारे बांस में बंधी मसहरियां लगा रहा था कि अचानक देहरी के बाहर से उमगती आवाज भीतर दौड़ती चली आयी-''अजिया होऽऽबाबू भैया आएं हैं बंबई से...''

झपटती हुई वह देहरी से बाहर हो गयी।

वह खुश है, परिवार बंबई लौट रहा है।

यह घर नया था, विले पार्ले वाले पुराने बंगले की अपेक्षा छोटा। इस घर में कबूतरों की गुटरगूं भी नहीं थी। उसने यह भी महसूस किया कि उसके बप्पा अमूमन घर पर कम रहते हैं। नेवल डाकयार्ड कॉलोनी से लगे एम.ई.एस. रिहायश के पीछे स्थित विशाल फार्म हाउस में अधिक रहते हैं। जिस फार्म हाउस की देखभाल माली सांवजी सपरिवार वहीं रहते हुए किया करता था और अब भी कर रहा था। वहीं से बप्पा रात-बेरात शिकार पर निकल जाया करते। कभी तुलसी लेक के घने जंगलों में शेर मारकर जीप में लदवाये चले आते तो कभी थाना जिले के जंगलों से कोई अन्य हिंसक पशु। आदिवासी गांवों में वे ठाकुर साब नाम से जाने जाते। उसे याद है सद्धू आदिवासी के घर वह एक बार उनके संग शिकार पर गयी थी। वहीं बप्पा ने पहली बार उसे बंदूक पकड़ना और निशाना साधना सिखाया था। एक चिड़िया को लक्ष्य बनाकर गोली दागते ही बंदूक अचानक दहशत से उसके हाथ से छूट गिर गयी थी। बप्पा ने आग्नेय नेत्रों से उस पर आग बरसाते हुऐ सद्धू और ग्रामवासियों के समक्ष बेलिहाजे हो डाटा था। इतनी जोर से कि उसे लगा था कि उनकी आवाज में कई सूजों का नुकीलापन आ समाया है जो उसकी हड्डियों में उतरता हुआ उसे निष्प्राण किए दे रहा है। ''ठीक से पकड़ो बंदूक और बायीं आंख दबाकर निशाना साधो...ट्रिगर दबाओ, दबाओ ट्रिगर।''

उसकी किशोर उंगलियां थर्रा रहीं थीं। क्यों यह आदमी उससे चिड़िया की हत्या करवा रहा है?

'नहींऽऽ' उसने दृढ़ता से प्रतिवाद किया।

'निशाना साधो!'

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

अचानक स्थिर टहनी पर बैठी चिड़िया की जगह उसे बड़े बप्पा का चेहरा झूलता हुआ दिखाई दिया था। उसने ट्रिगर दबा दिया था और गोली चलते ही मूर्छित होकर बप्पा के बाजू में ढेर हो गई थी।

जंगल से वापसी पर उसने सहमी आंखों से देखा था। सद्दू के हाथों में छह मरे हुए खरगोश लटक रहे थे। उसके बप्पा भी बड़े बप्पा जैसे ही निर्दयी और कठोर हैं!

वह रेसकोर्स में घुड़सवारी सीखने की उनकी इच्छा पर भी पानी फेर बैठी थी। घोड़े से गिरकर बायें घुटने में चार टांके लगे थे और सिर पर दो।

"अनपढ़ जाहिल मां से आगे नहीं बढ़ सकती!" उन्होंने क्रुद्ध होकर टिप्पणी की थी।

पहली बार उसे अपने बप्पा पर गुस्सा आया था। अम्मा को क्या कभी उन्होंने कुछ बनाने की सोची? तेरह साल की मासूम बच्ची जो एक देहरी के भीतर से पालकी में विदा होकर, फिर एक देहरी में जाकर कैद हो गयी। उससे क्या अपेक्षा करते थे वह? जिसे कभी वह अपने संग बाजार ले भी गए तो उसकी पसंद की वस्तु खरीदने के लिए उससे मात्र शो केस पर बाहर से उंगली रखवाकर वस्तु स्वयं पैक करवाकर गाड़ी में ले आए? परवाह की कभी कि चार साड़ियों में से एक को चुनना और पचास में से पसंद कर एक चुनने में जमीन आसमान का फर्क होता है!

उस लड़की से उन्हें क्या चाहिए था? नहीं सोचा कि कुछ देने का कर्त्तव्य भी बनता है उनका! उस लड़की की भी ठाकुर साहब से कुछ मामूली-सी अपेक्षाएं हो सकती हैं, सिवाय खानसामागिरी के! घुमड़ते ये अनुत्तरित सवाल उसके विकसित होते चेतन में निरन्तर घमासान मचाये रखते। प्रतिक्रिया में एक विचित्र-सी विरोध प्रवृत्ति पनपने लगी उसके भीतर। उससे जो भी करने के लिए कहा जाता और यदि उसे न रुचता तो वह ठीक उसके विपरीत आचरण करती। यह जानते हुए भी कि उसके विपरीत आचरण को उद्दण्डता के रूप में लिया जाएगा। बप्पा की अपेक्षाएं तिलमिलायेंगी ही नहीं, घोर आहत होंगी और वे क्षुब्ध। बाप-बेटी आमने-सामने डंटे मोर्चों की तरह घर की सीमाओं में तने रहने लगे।

उन्हीं दिनों उसने कागज पर अपने आक्रोश और सामाजिक विसंगतियों से उपजी किशोर तिलमिलाहट को रंगों में घोलना शुरू कर दिया। उसके चित्रकला शिक्षक मि. जोशी उसके चित्रों को देखकर विस्मय से भर उठते। दिए गये विषय को छोड़कर वह कुछ और बनाने लगती। उन्हीं दिनों 'पराग' की रंग भरो प्रतियोगिता और 'शंकर्स वीकली' के कई पुरस्कार जीते उसने। महाराष्ट्र की चित्रकला परीक्षा भी

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

उत्तीर्ण की। जोशी सर ने उसे खूब प्रोत्साहित किया। उसने मन ही मन तय कर लिया कि वह बड़ी होकर चित्रकार बनेगी। ठीक बेंद्रे और बी. प्रभा की तरह।

बप्पा ने कहा था–'यही सब करोगी तुम!'

इन्टरमीडियट में आते ही उसने 'मंगतराम पेट्रोल पंप' मांडुप में स्थित मजदूर यूनियन और 'जागरण' के दफ्तर में बैठना शुरू कर दिया था।

कॉलेज में उसने अपने हिंदी के प्राध्यापक प्रोफेसर अनंतराम त्रिपाठी और प्रो. वंशीधर पड़ा (सोमैया कॉलेज) के आग्रह पर कॉलेज में हो रही अंतर महाविद्यालय कहानी प्रतियोगिता के लिए कहानी लिखी। उस समय 'टाइम्स ऑफ इंडिया' की प्रतिष्ठित कहानी पत्रिका के तत्कालीन संपादक श्रीचन्द्रगुप्त विद्यालंकार जी कथा प्रतियोगिता के निर्णायक होकर आए थे। अस्वस्थतावश वह उस प्रतियोगिता में अपनी कहानी नहीं पढ़ पायी थी। उसकी सहपाठिनी राजी मेहता की कहानी प्रथम आयी थी, लेकिन सर की प्रतिक्रिया के मुताबिक उसकी कहानी अधिक परिपक्व थी बनिस्पत प्रतियोगिता में पुरस्कृत कहानी के। इसलिए वह 'सारिका' में अपनी कहानी भेज दे या स्वयं जाकर वहां कार्यरत उनके मित्र अवधनारायण मुद्‍गलजी को पहुंचा दे।

वह 'जे.जे. स्कूल ऑफ आर्ट्स' किसी काम से जा रही थी। तय किया कि कहानी वह त्रिपाठी सर के मि. अवधनारायण मुद्‍गलजी को स्वयं अपने हाथों पहुंचा आयेगी। 'टाइम्स ऑफ इंडिया' के चौथे माले पर 'सारिका' का कार्यालय था।

लिफ्ट से बाहर निकलते ही उसने सामने से चले आ रहे एक आकर्षक व्यक्तित्व वाले नौजवान को रोककर पूछा–'सारिका...?'

'सामने ही है...सीधी चली जाइए।'

उसकी अटपटाहट ने नौजवान को तनिक उदार बनाया–'आइए...किनसे मिलना है?'

'मुद्‍गल हैं कोई...'

'हैं, ...आप?'

'मैं सोमैया कॉलेज से हूं।'

'त्रिपाठीजी ने भेजा है?'

'जी, आप परिचित हैं उनसे?'

'अच्छी तरह से...वो देखिए, वो बैठे हुए हैं मुद्‍गल।'

'धन्यवाद...' उनके संकेत पर नजर डाल वह कृतज्ञ हो आई।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

वह नौजवान पलटकर लिफ्ट में दाखिल भी नहीं हुआ होगा कि संकेत किए गए सज्जन के सामनें पहुंचकर उसने हाथ जोड़ दिए-'नमस्कार मुद्गलजी!' उसकी आवाज मुस्कुराई।

प्रौढ़ सज्जन ने खुली फाइल से सिर उठा अपने दायीं ओर की खाली पड़ी हुई सीट को चौंकते हुए देखा-'मुद्गलजी शायद कैंटीन गए हुये हैं, बस, अभी उठकर गये हैं...।'

''मुझे आनंदप्रकाशसिंह कहते हैं, उन्हें कोई संदेश देना हो तो कहिए।''

वह जैसे धड़ाम से छत से टपकी। उस नौजवान ने ऐसी शरारत क्यों की उसके साथ? बेवकूफ दिखी वह उसे।

'यह...यह कहानी देने आयी थी।'

उन्हें कहानी थमाकर वह तेजी से लिफ्ट की ओर बढ़ी रोष से खदबदाती। दुबारा सामने पड़ जाए तो ऐसा सबक सिखाएगी उसे बद्तमीजी के लिए कि जीवन भर भूल नहीं पाएगा। किस लड़की से पाला पड़ा था।

दूसरे रोज उसने कॉलेज में त्रिपाठी सर से उस नौजवान का हुलिया बयान किया तो सर बेसाख्ता बोल पड़े-'वही तो था मुद्गल!'

सुनकर वह हतप्रभ रह गई थी।

कुछ दिनों बाद उसे कहानी निर्मम पोस्टमार्टम के साथ खेद की चिप्पी चिपकाकर वापस मिल गई थी।

''आप तो अभी कहानी कहने की कला के क, ख, ग से भी अपरिचित हैं। लिखने से पहले कृपया कुछ पढ़ें। देश-विदेश के महत्त्वपूर्ण लेखकों को।''

साथ में नत्थी थी विश्व के महानतम कथाकारों की कृतियों की लंबी फेहरिस्त। जिनमें से उसने कुछ को पढ़ा हुआ था।

-'काफी बेवकूफ समझता है।' उसने जवाब लिख दिया था-''मैं *अंधों में काना राजा* के गुमान से मुक्त हूं।''

चुनौती दी गई थी। चुनौती उसने स्वीकार की।

बाद में एक वाद-विवाद प्रतियोगिता में उस नौजवान से निर्णायक के रूप में दुबारा मुलाकात हुई...।

...और उस शाम के बाद पता नहीं कैसे और क्यों मुलाकातों का एक सिलसिला उनके बीच कुलाचें भरने लगा था। उस शाम भी उसने अपनी उसी निर्मम शैली में उसकी खामियों की ओर इंगित किया था। यह कहकर, उतनी बेवकूफ नहीं हो तुम, जितनी कहानी देने दौड़ी चली आई लड़की लगी थी मुझे!

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

उसे आज तक और अब तक समझ में नहीं आया कि यह कैसे संभव हुआ कि किसी के प्रेम में टूटे-फूटे पड़े हुए कवि, कथाकार अवधनारायण मुद्गल के प्रति वह क्यों आकर्षित होती चली गई, जो आगे चलकर 'टाइम्स ऑफ इंडिया' की चर्चित कहानी पत्रिका 'सारिका' का कमलेश्वर जी के बाद संपादक हुआ। सहानुभूति से प्रेम नहीं उपजा। शायद उसकी स्पष्टवादिता उसे भायी। शायद, बात इतनी भर ही नहीं थी। स्पष्टवादिता से उसका सामना उसके अपने घर में भी उठते-बैठते होता ही रहा है। अहं से बोझिल उस स्पष्टवादिता को झेल पाने और उससे प्रभावित होने की आदत उसकी अब तक नहीं बन पायी। भविष्य में भी आदत बन पाने की कोई गुंजाइश उसे नजर नहीं आ रही। बप्पा की स्पष्टवादिता को लेकर उसे हमेशा लगता रहा है कि उसमें सामने वाले की भावनाओं और तर्क-वितर्क के प्रति कोई सहिष्णुता नहीं है। उसका सम्मान करना तो दूर की कौड़ी है। उनकी स्पष्टवादिता मात्र अपने अहं से उपजे तर्कों को उस तक पहुंचाने का हिटलरी फरमान भर है...।

शायद उसकी स्पष्टवादिता में उसके सोच और विचारों के दरवाजे और खिड़कियां खुले हुए थे। जहां औरों के तर्क-वितर्क और उनके विचारों के लिए उदार 'स्पेस' था, सम्मान था, संवाद था। धज्जियां उड़ने को सन्नद्ध बहस के बावजूद।

जबकि एक बार भी उसने उससे नहीं कहा कि वह उससे प्रेम करने लगा है। उन्हीं दिनों बालकृष्ण राव के संपादन में इलाहाबाद से निकलने वाली साहित्यिक पत्रिका 'माध्यम' में उसकी एक साथ पांच कविताएं छपी थीं। उन कविताओं के भीतर के अन्तर्पाठ से गुजरते हुए उसने उसके मोहभंग की सघन पीड़ा को अपने भीतर उतरते हुए महसूस किया था। यह भी महसूस किया था कि कितना कठिन होता है जीना उसके बिना, जो हमारी धमनियों में बहते रक्त का प्रवाह बनकर प्रवाहित होने लगता है। कहानियों में उसके द्वारा किए गये मिथकीय प्रयोग वर्तमान व्यवस्था में उसकी प्रासंगिकता को जिस गहराई से व्याख्यायित करते, पढ़कर चकित हो उठती वह।

...उसकी अनुपस्थिति में उसकी उपस्थिति...उसकी बेचैनी बनने लगी थी।

ट्रेड यूनियन के पचड़ों, पेचों और प्रपंचों पर उसकी बेबाक राय उसकी दुविधा के जालों को बुहारने में हाथ बंटाने लगी थी।

वे दॉस्तोवस्की, गोर्की, शालोखोव, हेमिंग्वे और न जाने किन-किन पर बातें करने लगे थे। पढ़ने के लिए किताबें चुननी जरूरी हैं...।

घर के कठोर अनुशासन को उसके साथ उसकी बढ़ती अंतरंगता कतई नहीं

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

भायी। बहुतों से तो पहले ही नहीं भा रही थी। उसमें एक और अध्याय का जुड़ाव उन्हें खटकने लगा।

एक रोज उसे सुनाया गया। 'निहालसिंह के खानदान में (जिनके नाम पर उन्नाव स्थित उसके गांव का नाम निहालीखेड़ा पड़ा है) किसी लड़की को इतनी छूट नहीं मिली कि वह अपने मन को जिए!'

उसने प्रतिवाद किया था। निहालसिंह के खानदान में किसी लड़की ने कभी किसी स्कूल तो क्या, पार्टी और खड़िया के भी दर्शन नहीं किए होंगे। पिता के साथ देहरी से निकलकर जंगलों में शिकार पर नहीं गयी होंगी। कभी आधुनिक पोशाकें नहीं पहनी होंगी। खेल प्रतियोगिताओं और वाद-विवाद में पुरस्कार नहीं जीते होंगे। घुड़सवारी नहीं की होगी। अखबारों में नहीं लिखा होगा, फिर वह लड़की सुशिक्षित और विचारशील युवक की मित्र क्यों नहीं हो सकती? उसका वरण क्यों नहीं कर सकती।

'क्यों और किसलिए सोचना तुम्हारा काम नहीं' उससे कहा गया था।

अम्मा उसके और बप्पा के बीच गहरा रहे तनावों से चिंतित हो उठी थीं-'तुम नहीं जानती बैसवाड़ा के इन सूर्यवंशियों के प्रतिष्ठित खानदानों (?) को। लड़की का पांव तनिक भी घर की मर्यादा से बाहर हुआ नहीं कि उसे आजाला (एक और आंगन) के कुएं में बलात ढकेल कर प्रचारित कर दिया जाएगा कि पानी खींचने के लिए शौकिया रही बिटिया का पांव अचानक कुएं की जगत पर से फिसल गया...'' अम्मा ने उससे कुछ किस्से बयान किए थे।

सुनकर उसने कानों में उंगली दे ली थी। इतनी नृशंसता! कल्पनातीत!

नहीं, कल्पनातीत नहीं थे किस्से...।

उसे दुआर के नीम के पेड़ से बंधा अपने प्राणों की भीख मांगता भीखू स्मरण हो आया था। स्मरण हो आया था जन हरखू! जाने क्यूं एक रात उसका माटी का घर धूं, धूं कर लपटें भरने लगा था। स्मरण हो आयी थी नर्दवा और अटारी पर बनी टट्टी साफ करने वाली डोमिन काकी। स्मरण हो आया था सद्यः जन्मी पड़िया को खूंटे से खोल देने पर उसके पेट पर मां का दूध पी लेने की एवज में गालों पर तड़ाक् से पड़ा पितियाउत राजा काका का थप्पड़। और...और...जिन्हें याद करते हुए उसकी रूह कांपती है। वह सिर्फ अपनी अम्मा का मुंह ताकती रह गयी थी। औरत समझती सब है; मर्द उसे गूंगा, बहरा क्यों समझता है...!

भीतर अन्तर्द्वंद्व खौलने लगा...।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

यह कैसी व्यवस्था है! संस्कृति है! प्रतिष्ठा है! अंतर्विरोधों में जीती हुई? एक तरफ तो उसे सिखाया गया था कि नर्दवा (नाली) साफ करने आयी हुई डोमिन को सम्मान देते हुए उसे डोमिन काकी कहकर पुकारना चाहिए, किंतु उन्हीं डोमिन काकी के घर बाग से लौटते हुए प्यास लगने पर पानी मांग कर पी लेने पर उसकी जमकर पिटाई हुई थी कि आइंदा तुमने ऐसी हरकत दोहराई तो तुम्हारी खैर नहीं!

...अगर आदिवासी सद्धू चाचा की घरवाली के हाथ की बनी चावल की बड़ी-बड़ी चपाती चाव से खायी ही नहीं जा सकती, बंधवाकर लाई भी जा सकती है तो फिर वह उच्चकुल, ब्राह्मण युवक से ब्याह क्यों नहीं कर सकती? ब्राह्मण पूज्य हैं। उनके लिए घर में विशेष रूप से पक्का खाना बनवाया जाता है तो उनके साथ संबंध क्यों नहीं हो सकता, जबकि अवध बप्पा को बहुत पसंद आए थे।

जिस घर में मर्यादाएं तोड़ने के गुनाह के चलते लड़कियों को कुएं की जगत से ढकेलकर गांव जवार में उड़ा दिया जाता था कि लापरवाही के चलते उसका पांव फिसल गया, उसी खानदान में परंपरा टूट रही थी। एक लड़की अपने मनपसंद युवक से ब्याह करने का निर्णय कर बैठी थी। कैसे सह्य हो सकता था उसका यह दुस्साहस!

ब्याह के बाद उसे घर ही नहीं छोड़ना पड़ा, शहर भी छोड़ना पड़ा। विस्थापितों जैसी मन:स्थिति में वे दिल्ली चले आए। दिल्ली ने उन्हें सर्वेश्वर दादा और जीजी, मन्नू दी और राजेन्द्र भाई साहब के रूप में अपनी वात्सल्यमयी गरमाहट में समेट लिया। मन्नू दी ने उसे यह अहसास ही नहीं होने दिया कि उनके घर में रहते हुए वह अपने घर में नहीं है। वह बीस का नोट वह कभी नहीं भूल पाती जिसे मन्नू दी ने उसे बिना बताए उसके पर्स में सरका दिया था। उसके सकुचाते हुए पूछने पर स्नेह से झिड़ककर बोली थीं-'कॉफी हाउस जाकर कुछ खा-पी लेना...।'

उन्हीं दिनों '**रूना आ रही है**' कहानी का बीजारोपण हुआ। लिखी वह बहुत बाद में गई। जातिगत, धर्मगत, संवेदनात्मक संकीर्णताएं और उसके मानसिक कुपरिणाम ही इस कहानी के मनोवैज्ञानिक रचनात्मक दबाव हैं। मानव के कायदे-कानून बनाये थे मनुष्य की बेहतरी की परिकल्पना के साथ, मगर अपनी स्वार्थ लिप्सा में निरंतर बौना होता गया मनुष्य उन्हें अपने लिए कटघरों में परिवर्तित करता चला गया, जो जीवन नहीं देता, आतंकित डोलती-फिरती कायाओं को जीवन जीने के भ्रम में जिलाएभर रखता है।

उसके और अवध के घर को ईंट और पलस्तर की शक्ल में मांस-मज्जा की

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

दरकार थी, जो बान्द्रा पूर्व की दलदलीय खाड़ी में भराई के उपरांत एक ऊंची इमारत के ढांचे में अपना आकार ग्रहण कर रहा था। पैसे उनके पास थे नहीं। झोपड़-पट्टी के अपने आठ-बाई-आठ की खोली में गुजर करते हुए भी कुछ बच नहीं पाता था। बेटे राजीव के पैदा होते ही बप्पा की मुंह मोड़ सख्ती ने कुछ पिघलना शुरू किया था। सुबह होते ही अंजाबाई आती और कहती कि साब ने गुड्डू को लेकर आने के लिए कहा है- ले जाऊं? अम्मा ने बताया था उसे। गर्व से सभी को बताते हैं बप्पा कि चित्रा को बेटा हुआ है।

बप्पा अपने नाती के लिए बहुत कुछ करने को उत्सुक हैं।

वह गुड्डू के लिए एक फ्लैट खरीदकर देना चाहते हैं। भविष्य के लिए उसका जन्मदिन धूमधाम से हर वर्ष मनाना चाहते हैं।

उसने अम्मा से स्पष्ट कह दिया था। उनसे उन्हें एक पाई की मदद नहीं चाहिए। वह चाहे जिस भी स्थिति में हों। यह उसका स्वयं जन्मा संसार है।

आर्थिक दबावों के चलते अवध ने नौकरी के अलावा कई विज्ञापन एजेंसियों में विज्ञापन लिखने शुरू कर दिए थे और उसने अनुवाद कार्य। यह वही समय था जब सत्ता आम आदमी को भूल अपने को बचाने में लगी हुई उसकी आवाज पर काले कानून के ताले जड़ने की गोरिल्ला साजिशों की भूमिका रच रही थी। प्रतिरोध का स्वर बुलंद करने के लिए देश का आलोकित जनमानस जयप्रकाश बाबू के आह्वान पर सत्ता के गलियारों को चुनौती देने सड़कों पर उतर रहा था। कहानियां डायरी के गर्भ कारागार में कैद होने लगी थीं। एक समय तो उसे ऐसा लगने लगा कि अब शायद ही वे कहानियां डायरी से मुक्त हो गली-गलियाररों में अपने जीवन के उन तोड़ देने वाले संघर्षों से मुठभेड़ कर सकें जहां उन्हें सन्नद्ध होने की जरूरत थी। वह पहले से ही महिलाओं के उत्थान के लिए संकल्पबद्ध संस्था जागरण से जुड़ी हुई थी। घर-घर बर्तन मांजने और झाड़ू-पोंछा कर आजीविका चलाने वाली अशिक्षित-शोषित बाइयों से मिलती थी। 'जागरण' बाइयों को उनके अधिकारों के प्रति सचेत करने और उनके अधिकार उन्हें दिलाने के लिए बाध्य थी। उनके साथ होने वाली नाइंसाफियों के प्रति आवाज बुलंद करने के अलावा वह उनकी दाम्पत्य-कलह सुलझाने, बच्चों की शिक्षा-दीक्षा के प्रति दायित्व बोध कराने, आवश्यकता पड़ने पर उनकी कॉपी, किताब, दाखिला आदि की व्यवस्था करने से लेकर उनके उपचार संबंधी सभी कार्यों की देखरेख करती थी।

'जागरण' के लिए काम करते हुए वह अविश्वसनीय से लगते अपने आसपास

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

फैले नरक सदृश्य झोंपड़-पट्टी के दयनीय जीवन के संपर्क में आयी। उन घरों के संपर्क में भी आयी जो दिहाड़ी मजदूरी से लेकर देहव्यापार, पॉकेटमारी, चोरी, दारू की बिक्री, दारू की भट्टी चलाने, साग-सब्जी बेचने, ड्राइवरी, फेरी, सिनेमा टिकटों के ब्लैक करने से लेकर सुपाड़ी लेकर कत्ल करने तक के धंधों में फंसे हुए, किसी भी जून की रोटी का जुगाड़ करते हुए, दूसरे रोज के लिए डोल बैठाने की जुगत में भिड़े रहते थे। उतने ही निश्छल कि ममता पाते ही फौरन सुधरने की कसमें खाने लगते। मुसीबत के समय किसी के लिए भी अपनी जान जोखिम में डालने से न चूकते...।

उसे नहीं मालूम, न उसे याद पड़ता है कि वह किसी के लिए ठाकुर साहब की बेटी भर होकर इस सीमा तक आदरणीय हो सकती थी!

उनके दुखों-सुखों के लिए इतनी अपनी कि वे यह मानकर जब-तब उसके पास निःसंकोच चले आते थे कि उसके लिए कोई समस्या कठिन नहीं है...।

उनके बीच उनकी तरह ही रहते और काम करते हुए पीप उगलते फोड़े-सा एक दारुण संसार निरंतर उसके मस्तिष्क में हथौड़े-सा धबकता रहता।

आंखों के सामने उन्हें वह अपने उधड़े सपनों पर सूरज उगने के साथ पैबंद टांकते हुए देखती। गाहे-बगाहे लाउडस्पीकर गूंजते नेताओं के आश्वासनों पर परिवर्तन की कामना की एवज में दो-चार सार्वजनिक शौचालय और एकाध नल की टोंटी प्राप्त कर अपनी आधी ज़िंदगी पंक्ति में खड़े हो अपनी बारी की प्रतीक्षा में गुजार देते।

उसे समझ में नहीं आता, बेमौसम शक्लें बदलती तकलीफें और झिंकाती तमाम असुविधाओं के बावजूद उसे अपने बप्पा का बारिश में रुनझुनाता खपरैलों वाला बंगला क्यों नहीं कचौटता! क्यों नहीं याद आता जल के असीम आलोड़न को आड़ दिए खड़ी पवई लेक की पहाड़ी के पीछे की उतराई पर स्थित धान की खेती और गाय, भैंसों की रम्भाहट से गुलजार विशाल फार्म हाउस! क्यों नहीं याद आता सहयाद्रि की गोद में दुर्गम चढ़ाई चढ़ती सरकारी जीपों का रोमांचभरा सफर! मांग रखते ही पूरी हो जाने वाली जरूरतें?

हां, खोली का आठ बाई आठ का कमरा जरूर बेटा पैदा होते ही कभी-कभी छोटा लगने लगता। ध्यान बंटते ही एक बार घुटनों के बल रेंगते बेटे ने मिट्टी के तेल की बोतल को पानी की बोतल समझकर मुंह से लगा लिया था।

उलटियां करनी शुरू कर दी थीं।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

पन्ने आपातकाल से विद्रोह करने लगे थे।
Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

कहानियां फिर से जन्म लेने लगी थीं अवरोधों को तोड़कर। प्रकाशित भले ही वह बाद में हुई।

...रिमांड होम के कमरे में कैद कर दिया गया किशोर बंडू अचानक 'त्रिशंकु' का नायक बन पिता से उत्पीड़ित मां की विदारक दुर्दशा से विचलित हो, दो निश्चय करता है। एक तो वह स्वयं कोई न कोई काम खोज कर मां को घर-घर बर्तन धोने और मालकिनों की दुत्कार सहन करने से निजात दिलायेगा। दूसरा, दूसरी औरत रख लेने और कई दिनों तक घर से गायब रहने और पारिवारिक दायित्व की उपेक्षा करने पर मां की सामान्य पूछताछ से चिढ़कर लोटे से मां का सिर फोड़ देने वाले निर्दयी बाप को वह जेल से छूटते ही जान से मार देगा। बाप की अय्याशियों के चलते ही वह और उसकी छोटी बहन कमला समाज में भिखारियों से जीवन जीने के लिए अभिशप्त हैं।

बहुचर्चित कहानी 'मामला आगे बढ़ेगा अभी' का दलित किशोर नायक मोट्या हिंदी के सुप्रतिष्ठित कथाकार, उपन्यासकार 'अश्क' जी को ही नहीं, बाद में मुझे भी लगा था कि 'त्रिशंकु' के बंडू के क्षुब्ध आक्रोश का, उससे अलग होकर भी उसी का मनोवैज्ञानिक विस्तार है...।

मातृविहीन किशोर मोट्या घर की मालकिन में मां का आत्मीय प्रतिरूप पाकर भी जब बीमार पड़ने पर अपनी पगार में से मालिक द्वारा निर्ममता से खाड़ा काट लेने पर मालकिन को खामोश खड़े हुए पाता है तो वह पुनः स्वयं को मातृविहीन हो गया महसूस करता है। विक्षुब्ध होकर वही बंडू मालिक की जिस 'टोयटा' कार को रोज सुबह रगड़-रगड़कर चमकाया करता था, उसे ही सरिये से पीटकर चूर-चूर करने पर आमादा हो उठता है...।

'आक्रोश की सकारात्मक मनोवैज्ञानिक अभिव्यक्ति' का उदाहरण है 'पुनश्च' के बहुचर्चित महिला कथाकार विशेषांक में प्रकाशित उसकी कहानी 'केंचुल'। उर्दू के प्रतिष्ठित लेखक रामलाल ने पढ़ते ही लखनऊ से पत्र लिखकर प्रशंसा की थी 'केंचुल' की। 'केंचुल' को 'पुनश्च' में पढ़कर 'अंधायुग' जैसी कालजयी रचना के रचयिता डॉक्टर धर्मवीर भारती ने उससे कहा था- अच्छी कहानियां वह 'धर्मयुग' में न देकर अन्य पत्रिकाओं को क्यों दे देती हैं?

बंबई के उपनगर भांडुप में स्थित 'हनुमान टेकरी' में दारू की भट्टी चलाने वाली और भट्टी की आय से अपने परिवार का भरण पोषण करने वाली अभिशप्त

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

गंगू बाई ने, एक सब्जी बेचने वाले भैया के प्रेम में पड़ी हुई अपनी बेटी को उससे विमुख करने के लिए उसे इस कदर पीटा कि उसके फटे माथे पर टांके लगवाते हुए उसकी अन्तर्व्यथा के टांके अनायास टूट गए। इसी गंगू बाई ने उसकी बहुप्रसंसित कहानी 'केंचुल' की कमलाबाई का चोला पहन लिया। अपने समय से मुठभेड़ करती कमलाबाई का। जो सुख वह न पा सकी जीवन में उसे अपनी बेटी को सौंपना चाहते हुए।

सोचती रहती है वह। धुनती है वह रुई के एक-एक फाहे को। मिलना चाहती है कपास के उस एक रेशे से जो कई अरबों-खरबों रेशों के साथ मिलकर अपने लघु बिहंसते से उजले रूप की असलियत रचता है! सवाल उठता है, रचना का यथार्थ क्या वही और उतना भर ही होता है, जो सतह पर दिखता है और नंगी आंखों से देखा और महसूस किया जा सकता है? रचना का यथार्थ निश्चय ही वह नहीं होता। ऊपरी सतह तो मात्र माध्यम भर होती है किसी रचना के मर्म के संधान की और उसमें प्रवेश की। जाहिर है। संधान को साध लेने से ही किसी रचना की सूक्ष्म दृष्टि का अन्वेषण संभव हो पाता है, जो अन्तर्सत्य के उस सत्य को उद्‌घाटित करता है, जिसे प्रत्यक्ष से अप्रत्यक्ष को उपलब्ध कर लेने की लेखकीय मशक्कत कहा जा सकता है। 'चेहरे', 'इस हमाम में', 'भूख', 'लकड़बग्घा', 'जगदम्बा बाबू गांव आ रहे हैं', 'बेईमान' आदि उसी दारुण सत्य की गवाह हैं, जो प्रत्यक्ष से अप्रत्यक्ष के संधान की यात्रा की ही उपज हैं। कितनी सफल हुई है वह अपनी इस अनवरत मशक्कत में, यह विद्व समीक्षक ही बता सकते हैं।

भूमंडलीयकरण, पहचान का संकट, संस्कृतियों का रीमिक्स, क्षरित होते जीवन मूल्य, घुटन से गुजर रही पीढ़ियां, संवेदना का क्षरण, बाजारवाद के दबाव, विश्व गांव की परिकल्पना, गलाकाट प्रतिस्पर्धाएं और अपनी जमीन से उखड़ने का संक्रमण अन्य विस्फोटक चुनौतियां हैं वर्तमान समय की। 'गेंद' कहानी तेजी से विघटित होते कोटुम्बीय जीवन की कहानी है, जो उस विडंबना को रेखांकित करती है, जहां वृद्ध घर से उपेक्षित हैं और बच्चा घर में अकेला, जबकि दोनों को एक-दूसरे की जरूरत है।

बहुत कुछ और कहना चाहती है वह अपने घोर उपभोक्तावादी समय के दबावों की कुरूप परिणितियों के विषय में। 'आवां' लिखा जा चुका है...आगे भी लिखा जाता रहेगा। दुनिया फैल रही है। उसकी भी दुनिया का विस्तार हो रहा है। उसे यह भी महसूस हो रहा है। उसे घबराने की जरूरत नहीं है। विचार करने की

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

जरूरत है। जो कुछ हो रहा होता है, निश्चय ही उसके बीज कहीं न कहीं विद्यमान होते हैं। उन बासूंद को बीजों की नस्ल परखने की जरूरत बढ़ती ही जा रही है। समझने की जरूरत इस बात की भी कम नहीं है, अतिरिक्त चैतन्यता के साथ कि विश्वग्राम की कल्पना वास्तव में क्या लोक सहोदरवाद के ग्राम सुलभ कौटम्बीय परस्परता का ही पर्याय है या मात्र विकासशील देशों को अपने हाट बाजार में बदलने का छद्म भर!

रोज सुबह अनमनी नींद से उठकर वह यह देख चकित हो उठती है कि उसकी बोहों की लम्बाई पहले की अपेक्षा दो गुनी बढ़ गयी है और उनकी समाई हजारों गुना।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

दो घरों का एक ही चूल्हा

17 अक्तूबर 2003, रात 11:20 पर, अवारी होटल, लाहौर

जुगनुओं की झिलमिल-से नहाकर कुछ देर पहले ही जावेद इकबाल साहब के खूबसूरत बंगले से 'अवारी होटल' लौटी हूं। यह कैसी झिलमिल है जो भीतर चिपके बैठे कुछ अंधेरे जड़ कोनों को आलोकित ही नहीं कर रही, उन्हें बीन-खींच बाहर फेंक यह भी बता, समझा रही है-दिल मोहब्बत के लिए होते हैं, इनमें अंधेरा क्यों भर लेते हैं हम! मोहब्बत रोशनी की ही खाद-पानी में सिंचकर परवान चढ़ती है-रोशनी पर तालों की जरूरत! झुक कर बंगले की देहरी की मिट्टी को माथे से लगा लेती हूं। कैसे भूल सकती हूं, अविभाजित भारत के महान शायर अल्लामा इकबाल साहब की देहरी है यह! आज भी जिनकी राष्ट्र वंदना देश के हर गली-कूचे में गूंजती है और जिसकी गूंज कभी कम होती नहीं लगती-'सारे जहां से अच्छा, हिंदुस्तां हमारा...।'

...इकबाल साहब के बेटे-बहू श्री एवं श्रीमती जावेद इकबाल साहब 'पेन एंड-पीस' कॉन्फ्रेंस में भाग लेने पाकिस्तान आये भारतीय लेखकों के दल का अपने जगमग घर में गहरी आत्मीयता से स्वागत करते हैं। लता-गुल्मों में गलबहियां डाले बंगले के पिछवाड़े लॉन में लगा लाहौर के सारे बुद्धिजीवियों को उन्होंने अपने घर में आमंत्रित कर लिया है। सब ऐसे मिले, जैसे मिलते ही रहे हों। सभी का कोई न कोई हिंदुस्तान किसी न किसी कोने में मौजूद है। जिनके नहीं हैं, उनके भी। स्मृतियां क़ब्रों से बाहर निकल सांसें भरने लगती हैं-"आप कभी मुरादाबाद गयी हैं?"

जावेद जी और मिसेज़ इकबाल बारी-बारी से हिंदुस्तान के हाल पूछ रहे हैं। जैसे कोई छूटे हुए घर की ईंटों पर चढ़े पलस्तर के हाल पूछ रहा हो। उनके स्वर में स्वर मिलाती कुछ और आवाजें भी हैं। 'सुप्रीम कोर्ट ऑफ पाकिस्तान' के कुरैशी मोहम्मद हाफ़िज और 'हाईकोर्ट' की एडवोकेट रिजवाना यास्मीन की आवाजें पैंतरा बदलती हैं। 'गुजरात में जो कुछ हुआ, उसे सही मानोगी आप?' असमंजसता

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

क्षणांश को भी नहीं धरती। गोधरा में जो कुछ हुआ, भयानक हुआ। उसकी प्रतिक्रिया में जो कुछ घटा उसकी जघन्यता अविश्वसनीय है। सत्ता की शह रही हो या न रही हो। इस बात से ज्यादा जिस बिन्दु ने उसकी आत्मा को दहलाकर रख दिया वह प्रश्न घुमड़-घुमड़कर उसके चेतन को कटघरे में खड़ा कर अब तक उसे परेशान करता रहता है। यह जनमानस को क्या हुआ क्यों कर वह अपना विवेक खो बैठा! कहां गुम हो गई उसकी मानवीय संवेदना। बड़े-बड़े राजनीतिज्ञों की उनकी निरंकुशताओं से उनकी कई ऐतिहासिक भूलों के लिए उसने उन्हें असहमति दी। उन्हें उखाड़ फेंक सबक की घुट्टी पिलाई है। यहां तक कि प्रधानमंत्री अटलबिहारी वाजपेयी जी को भी गुजरात के मुख्यमंत्री को उनका राजधर्म स्मरण कराने के लिए लेखक छटपटाया। किंतु कटघरे में तो उन्हें भी खड़ा किया जा सकता है? अफगानिस्तान में जब बेमिसाल मूर्तिशिल्प का नमूना 'बमियान' को खंडित किया गया तो पूरी दुनिया के बुद्धिजीवियों ने उस कृत्य की भर्त्सना की, उस समय पाकिस्तान के प्रगतिशीलों ने खामोशी क्यों ओढ़े रखी थी? ऐसा नहीं है। जवाब दिया गया, "हम इस कृत्य के बेहद खिलाफ हैं।" "तक्षशिला आप देखने जायेंगे। 'तक्षशिला' हमारे पास है। गर्व है हमें! पवित्र इस्लाम को मानने वालों को दोहरापन क्षुब्ध करता है। जो बुतपरस्ती और तस्वीरों के खिलाफ मुहिम चलाते हैं, वही पासपोर्ट के लिए अपनी तस्वीरें खिंचवाने और उसे सहेज कर रखने में अन्यथा महसूस नहीं करते। उसे समय के साथ चलना मानेंगे, लेकिन मूर्तियों को सहन करना अपने धर्म के खिलाफ। यह राजनीति का कुरुप चेहरा है और यही फर्क है हमारे यहां और आपके यहां में आजाद देश के नागरिक होकर भी हमारे लेखकों ने अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता के लिए दंड भोगा है। भोगना पड़ सकता है। बोल पर ताले भी इसीलिए पड़ जाते हैं। फ़ैज़ से लेकर फहमिदा रियाजा तक ने प्रतिरोध का स्वर बुलंद करने की खातिर देश निकाला झेला है।"

लॉन के एक ओर खाने की मेज़ें सजी हुई हैं। आग्रह मनुहार करता है। उठकर चलते हुए इंदिरा गोस्वामी मिसेज जावेद इकबाल को आसाम की विशिष्टताओं की जानकारी दे रही हैं। बगल से अजित कौर की बहस कानों को छूती है। राजनीति लेखकों के आने-जाने पर पाबंदी कैसे लगा सकती है? क्यों हिंदुस्तान का लेखक पाकिस्तान नहीं आ सकता और पाकिस्तान का लेखक हिंदुस्तान नहीं जा सकता? उन्होंने तय कर लिया कि इस दुराग्रह के विरुद्ध वे जमकर लड़ाई लड़ेंगी। उन्हें खुशी है, लड़ाई में उनकी जीत हुई। बरसों पहले वे लेखकों और शायरों का जत्था लेकर पाकिस्तान आयी थीं, अब फिर आयी हैं। अपने देश भी वे पाकिस्तान के

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

दिग्गज लेखकों-शायरों को बुला चुकी हैं। आगे भी बुलायेंगी। सियासत जो अब तक नहीं कर पाई, दोनों देश के लेखक मिलकर करेंगे। बेटी अर्पणा कौर (विश्व विख्यात चित्रकार) की पेंटिंग्स का पैसा खर्च कर रही हैं। सरकारें सहायता को आगे आयें तो स्वागत है। भारत सरकार ने सहायता की भी है। अर्पणा को पता है, उसकी लेखिका मां पागल है। उसने तो संकल्प लिया हुआ है। दोनों देशों के बीच अमन-चैन कायम करने की दिशा में वह हरसंभव प्रयास करेंगी। इधर भी अपने, उधर भी अपने। दोनों मुलकों की दुश्मनी उन्हें बर्दाश्त नहीं। मुसर्रफ उनसे मिलने को राजी हों तो वह उनसे भी दो टूक बात कर सकती हैं।

अभी तो लाहौर देखा है और जितना भी देखा है, बड़ी शिद्दत से महसूस किया है, इस औरत का जुनून वहां भी चढ़ रहा है।

मनोहरश्याम जोशी को लोग उमगकर बता रहे हैं कि उनका चर्चित धारावाहिक 'बुनियाद', 'हमलोग' उन्होंने देखा है और पाकिस्तान में बहुत पसंद किया गया है। अनकहे जोशी जी तनिक खिन्न हुए से लगे। उनके परिचय की इस विशेषता पर अजित जी कुछ अधिक ही पेपरवेट रख रही हैं। जोशी जी उर्दू कितनी अच्छी बोलते हैं। दुख होता है। अपनी भाषा से यहां के बंदों का नाता ही टूटता जा रहा है। बड़ी हौंस लेकर आये थे। पाकिस्तान में उर्दू ही उर्दू सुनने को मिलेगी...।

मेरी ओर मुड़कर जोशीजी ने अपनी खिन्नता को शब्द दिए-"मैं कितना बड़ा लेखक हूं हिंदुस्तान का चित्रा, अजीब हैं ये लोग जानते ही नहीं।"

लजीज खाने की गंध प्लेटें उठाने को आमंत्रित करती है। समझ में नहीं आ रहा। पच्चीसों किस्म के पकवानों के बीच हमारे खाने के लिए भी कुछ है। पूरे दल में इंदिरा गोस्वामी और मैं शाकाहारी हैं। मिसेज जावेद खेद प्रकट करती हैं। उन्हें बिलकुल अंदाजा नहीं था कि हम मांस नहीं खाते। उन्होंने तो हमारे लिए न जाने क्या-क्या बनवाया है।

हमें पांच मिनट के लिए रुकने को कहा गया। आनन-फानन कहीं से कढ़ी का इंतजाम किया गया। कढ़ी का वह स्वाद अब तक जुबान पर पर ठहरा हुआ है। इतनी स्वादिष्ट कढ़ी!

रात को लाहौर की गलियां घूमने की ख्वाहिश थी, सभी ने हाथ खड़े कर दिए। इतनी रात गए? तर्क मुंह में ही बंद रह गए-रात तो अभी शुरू भी नहीं हुई है। किसी शहर को रात में न देखा जाए तो उसका असली चेहरा देखने से वंचित होना पड़ता है।

सुबह अमृतसर के लिए शताब्दी से चले थे। अखबार मिला जरूर मगर पढ़

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

नहीं पाये। 'अवारी' पहुंच कर कमरे में चाय बनाकर पीते हुए अखबार की तलब महसूस हुई। बैरे को दस रुपये पकड़ाते हुए कहा, यहां दिल्ली का 'हिंदुस्तान टाइम्स' या 'टाइम्स ऑफ इंडिया' मिलेगा? बैरे ने खिन्नता प्रकट की। लाहौर में पहले सारे हिंदुस्तानी रिसाले मिल जाते थे, अब प्रतिबंधित हैं। 'डॉन' ले आयें? तीन रुपये मुझे और देने होंगे। अचरज हुआ। तेरह रुपये का अखबार? बहुत पन्ने होते हैं 'डॉन' में; जवाब मिला। उर्दू के 'जंग' आदि की क्या कीमत होगी। पूछने पर बताया गया कि दस रुपये से नीचे यहां शायद ही कोई अखबार मिलता हो। लाहौर का किसान तबका या आमजन कौनसा अखबार पढ़ता है। आम तबके के लिए पाकिस्तान में अखबार सपना है। रेडियो से समाचार सुन-सुना लेते हैं लोग। मैं उसे बताती हूं। हिंदुस्तान में हर भाषा का अखबार ढाई-तीन रुपये से अधिक नहीं पड़ता। आमजन से लेकर किसानों तक में इसी कीमत में अखबार पहुंचता है। सूचना और समाचार से वंचित आवाम भला समय के साथ कैसे जुड़ पायेगा? खाते हुए मैं जब मिसेज जावेद से पूछती हूं तो जवाब उनकी बगल में खड़ी एक अन्य खूबसूरत महिला देती हैं- सूचना और समाचार को आवाम से जोड़ने के खतरे उठाने को सियासत राजी हो, तब अखबार सस्ते हों। किसानों की तो कमर टूटी हुई है यहां। हिंदुस्तान हर मामले में आम आदमी की पहुंच के भीतर है। गरीबी गुरव्वत वहां भी है, मगर यहां जितनी जानलेवा नहीं। व्यापार के लिए खुली छूट हो तो हमारे यहां आसमान छूती कीमतें जमीन न लोटेंगी। चीनी चीजें हमें न भाती हैं, न सस्ती लगती हैं।

अजित कौर भोजन करते हुए वाघाबॉर्डर की दिलचस्प घटना सुनाती हैं। सुनकर लोग हंसी नहीं रोक पाते।

'नो मैंस लैंड' पार कर जैसे ही भारतीय लेखक दल ने पाकिस्तानी सीमा में प्रवेश किया, सभी के पासपोर्ट ले लिये गये। इमीग्रेशन पर मुहर लगनी थी। तभी उस ओर खड़े स्वागत के लिए व्याकुल पाकिस्तान की मशहूर क्रांतिकारी शायरा और भारत में इन दिनों सारांश प्रकाशन से प्रकाशित आत्मकथा 'बुरी औरत की कथा' के लिए चर्चित किश्वर नाहिद, डॉ. मुबशर हसन, फरवर जमाल मुन्नू भाई, ताहिरा मजहर अली, नुसरत शेख, खादिम हुसैन आदि गले मिलने आगे बढ़ आये। नगाड़ों की ध्वनि और फूलों की वर्षा से नहा सभी भाव विह्वल हो उठे। पहरे पर खड़े लंब तड़ग सख्त चेहरों पर अपनत्व की ऐसी मुस्कान खिली कि सारे कायदे कानून ताक पर जा दुबके। भारतीय दूरदर्शन पर जिन्हें पांव पर पांव पटकते पाकिस्तानी झंडे को सलामी देते देख रूह के रोयें खड़े हो जाते रहे हैं, उन्हें सहज भाव से लड्डू खाते

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

देख मन ऐसा भीगा जैसे सावन के संवराये बादलों ने कुछ देर पहले ही झड़ी लगायी हो। अद्‌भुत मिलन था। किश्वर नाहिद ने जब हम लोगों के हाथों में शांति के प्रतीक सफेद कबूतर उड़ाने के लिए पकड़ाये और उनके संग हमने उड़ाये तो लगा कि उड़ने वाले कबूतर नहीं थे, दोनों भाइयों (हिंदुस्तान-पाकिस्तान) ने अपने बंद पंखों की सील तोड़ी है और संग-संग खुले निरभ्र आसमान में उड़ानें भरी हैं-सीमाएं तोड़।

'अवारी होटल' पहुंचकर जब हम पारंपरिक घोड़ी नृत्य की लय और ताल की झमाझम-से रसविभोर होते सुर्ख गुलाब की पंखुड़ियों में नहाते मशहूर अफसाना निगार इंतजार हुसैन साहब डॉ. अनवर सज्जाद, मि. जावेद शाहीन, मि. अल्ताफ कुरैशी और अवारी होटल के मैनेजर मि. कासिम जाफरी साहब से गले मिल रहे थे तो पता चला, पाकिस्तान में हमारी उपस्थिति अवैध है और किसी भी क्षण हमें जेलों की हवा खानी पड़ सकती है। पाकिस्तान में प्रवेश के समय हमारे वीजा पर जो कानूनी मुहर लगनी थी, नहीं लगी। फौरन हमारे पासपोर्ट दोबारा एकत्र किये गये और उन्हें आनन-फानन वाघा बॉर्डर भिजवाया गया। इतनी मुस्तैदी के बावजूद आखिर ऐसी गलती हुई कैसे? पता लगा गलती हमारी नहीं, पाकिस्तानी अधिकारियों की है। दोनों देशों के लेखकों का मिलन उन्हें भी इतना विह्वल और भावुक कर गया कि वे हमारे जरूरी कागजों पर सरकारी मुहर लगाना ही बिसर गये।

एक शेरनी इधर है, एक शेरनी उधर भी। किश्वर नाहिद ने अपने पुरजोर प्रयासों से अनेक विरोधों को झेलते हुए 'पेन एंड पीस' कार्यक्रम के तहत भारतीय लेखकों की इस यात्रा को संभव बनाया था। तीन संस्थाओं के सहयोग से- 'फाउंडेशन ऑफ सार्क राइटरस् अंड लिटरेचर (इंडिया)' 'एक्शन एंड पाकिस्तानी' और 'हव्वा एसोसिएट्स पाकिस्तानी'।

18 अक्तूबर 2003, लाहौर, रात 11:20 पर

चाय बनाना चाहती हूं। कमरे में रखी केटल में पानी डालने के बाद पाती हूं कि टी-बैग्स नदारद हैं। सुबह इंदिरा ने कहा था- उसके पास लीफ टी के उम्दा किस्म के टी बैग्स हैं। जब भी जरूरत महसूस हो, उनसे बेझिझक मांग लूं। चाय वे अपने साथ लेकर चलती हैं। खास असमिया चाय की आदी हैं वे। संकोच होता है। इस वक्त उन्हें खटखटाना उचित नहीं। सुबह आठ-दस टी बैग्स उनसे मांगकर रख लूंगी। कमल कुमार के कमरे में फोन करके देखती हूं। पाकिस्तान देखने के लिए उत्सुक कमल कुमार अपने निजी खर्च पर 'फाउंडेशन ऑफ सार्क राइटरस् एंड लिटरेचर' (इण्डिया) के डेलीगेशन में शामिल होकर यहां आयी हैं। यात्राओं में

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu
कमल की खासी रुचि है। लेखकीय यात्राओं में विशेष! कमल जग रही हैं। उसका आग्रह होता है। क्यों न उसके कमरे में आकर चाय पियूं? उससे साफ कह देती हूं, टी बैग्स पहुंचा दे। अपने साथ होने के वक्त को बांटना, रात सोने नहीं देगा।

कोई चीज अखर रही है।

ऐतिहासिक गवर्नमेंट कॉलेज लाहौर, जो अब विश्वविद्यालय का रूप धारण कर चुका है, के परिसर में स्थित सफेद मस्जिद शायद कुछ सवाल खड़े कर रही है। शिक्षाण संस्थाओं को धार्मिक स्थलों से दूर रखना चाहिए। चर्च से जुड़े शिक्षा संस्थान इसीलिए मुझे कभी उचित नहीं लगते। 'हिमालयन को-ऑपरेटिव हाउसिंग सोसाइटी' घाटकोपर से जब हम बांद्रा पूर्व स्थित 74, पत्रकारनगर के अपने घर में स्थानांतरित हुए, मेरी पूरी कोशिश थी कि बच्चों को किसी चर्च वाले स्कूल में दाखिला न लेना पड़े। कोशिश सफल नहीं हुई। निकट के 'कार्डिनल ग्रेसियस स्कूल' में दाखिला मजबूरन करवाना पड़ा। उस समय मैंने स्कूल के तत्कालीन फादर प्रकाश से सीधे प्रश्न किया था। 1973 की बात है। स्कूल की प्रार्थना कहां होती है? फादर प्रकाश जैसे आशय भांप गये थे- चर्च में नही होती। स्कूल प्रांगण में होती है।

साथ चलते हुए उर्दू के वहीं के एक लेखक ने (नाम स्मरण नहीं) व्यंग्य किया- जब इस इमारत को मस्जिद में परिवर्तित कर ही दिया है तो फिर इसका रंग सफेद क्यों है? नमाज अदा होती है! होती है। मेरी समझ में नहीं आया। उन्हें नमाज अदा होने से आपत्ति थी या सफेद रंग से। मुझे ठीक से यह भी नहीं मालूम कि मस्जिद का रंग सफेद होना चाहिए या नहीं? नहीं तो क्यों? गजब की इमारत है। लाहौर गवर्नमेंट कॉलेज विश्वविद्यालय की! अंग्रेजों की प्रशंसा इस मामले में तो करनी ही पड़ेगी।

कलात्मकता और भव्यता की प्रतीक आधुनिक इमारतें दोनों देशों में बन तो खूब रही हैं, मगर गोथिक शैली का उन्नत और मजबूत वास्तु अपनी मिसाल आप है। उसके आकर्षण में बंधने से आप लाख चाहने के बावजूद छटक नहीं सकते। लाहौर कॉलेज के गलियारे ऐसे ही हैं। ऐतिहासिक पुस्कालय का अवलोकन करते हुए लगा मेजों पर विद्यार्थियों के साथ बैठकर स्वयं भी कोई किताब खोल ली जाये। साथ चलते हुए सज्जन बताते हैं। वाइस चांसलर डॉ. खालिद आफताब केवल आधुनिक शिक्षाशास्त्री ही नहीं हैं, कवि हृदय भी हैं और उनकी देखरेख में कॉलेज का आधुनिकीकरण जारी है। अपनी कक्षाओं में बैठे हुए विद्यार्थी खामोशी से हमें देखते हैं। उनकी आंखों में पहचान की आंच उगती है और हमें छूकर पुलकित कर जाती हैं।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

कॉलेज के सभागार में हम सब लेखकों का गर्मजोशी से स्वागत होता है। स्वयं वाइस चांसलर डॉ. खालिद आफताब हरेक का स्वागत करते हैं। हममें से कुछ लोगों को बोलना है। कैसा लग रहा है हमें पाकिस्तानी आना? मैं आफताब साहब से कहती हूं- अलगी अलगा का वजूद अपनी जगह है और उस सत्य को तो स्वीकारना ही होगा, मगर लग रहा है कि घर से निकलकर अपने ही घर में अपनों के बीच दाखिल हो रहे हैं-और क्या कहें।

विश्वविद्यालय का स्मृति चिह्न आफताब साहब बड़े खलूस से भेंट करते हैं। संग है विश्वविद्यालय की 2002-2003 की पत्रिका 'रावी'। कॉलेज से विश्वविद्यालय बनने पर आया उसका पहला अंक। 'रावी' का रचना वैविध्य चमत्कृत करता है।

...यह है लाहौर का हाईकोर्ट। यहीं भुट्टो को फांसी की सजा सुनायी गयी थी। लोकतंत्र को फांसी दी जा सकती है? बेनजीर भुट्टों ने उस काले दिनों की काली परछाइयों की घुटन और बेबसी को शब्दों में बांधा है। उन सिसकते-सुबकते शब्दों में आवाम की आंखों का गीलापन कम नहीं शामिल!

किश्वर नाहिद बस में ऐलान करती हैं- दोपहर का भोजन भारतीय लेखक दल के सम्मान में पाकिस्तान के सबसे बड़े प्रकाशक 'संगे अमील' दे रहे हैं। उन्होंने यह भी प्रस्तावित किया है कि उनके प्रकाशन से प्रकाशित अपनी पसंद की कोई भी पुस्तक भारतीय लेखक स्वयं चुन सकते हैं और वह पुस्तक उन्हें स्वयं उनकी ओर से भेंटस्वरूप होगी। किताबों की दीवारों के बीच भोजन! अद्भुत अनुभव लगा। महसूस हुआ कि जैसे किताबों से बाहर निकलकर उसके पात्र आगे आकर हमें स्वयं प्लेटें पकड़ा रहे हैं। देर हो चुकी है। अत: निर्धारित कार्यक्रमानुसार हम घूमने निकले लाहौर, अकबरी किला, बादशाही मस्जिद और अजित कौर एकाएक बस रुकवा लेती हैं। उनके संग गुरु अर्जुनदेव के गुरुद्वारा में मत्था टेकने मैं और इंदिरा गोस्वामी भी उनके संग उतर पड़ते हैं। यह देख चकित हो उठती हूं। पूजा-पाठ में अजित कौर कब से विश्वास करने लगी? दानपात्र में उसने श्रद्धा से बड़े नोट सरकाये। जाना तो मैं और इंदिरा 'ननकाना साहिब' भी चाहते थे। लाहौर के दक्षिण-पश्चिम में करीब सत्तर-बहत्तर किलोमीटर की दूरी पर स्थित है। सिखों का यह महत्त्वपूर्ण तीर्थ स्थल है। ननकाना साहिब वही स्थान है जहां 1469 में सिख धर्म के संस्थापक गुरुनानक देव जी जन्मे थे।

प्रतिष्ठित लेखक अनवर सज्जाद संगे अमील के किताबों से घिरे कार्यालय में अपने दिल की बात कहने का साहस दिखाते हैं। दोनों मुल्कों के बीच नफरत की दीवार टूटनी चाहिए। दोनों मुल्कों के बीच लेखकों, बुद्धिजीवियों और आमजन के

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

बीच स्वतंत्र आवाजाही के अवसर निर्मित होने चाहिए। कितनी जड़ स्थिति है। दो भाइयों के बीच एक-दूसरे के लिए ये दरवाजे क्यों बंद हैं? हम सब अनवर सज्जाद की पीड़ा से सहमत हैं। सच तो यह है कि पाकिस्तान को आदत पड़ चुकी है कुछ मुगालतों में जीने की। इस्लाम के नाम पर पाकिस्तान को अन्य इस्लामिक राष्ट्रों से खान-पान, व्यापार-व्यवहार अवश्य करते रहना चाहिए, किंतु जितना करीब उसे भारत के होना चाहिए, होना जरूरी है। दोनों देशों के बीच परस्पर शांति, सहयोग, दुख-सुख में साझेदारी, उनकी सदियों पुरानी सांझी परंपरा का तकाजा ही नहीं है, उनकी सुदृढ़ता भी है। 'संगे अमील' के कार्यालय में उपस्थित दोनों देशों ने अनवर सज्जाद की अपील पर तालियां बजा जैसे उस पर सहमति की मुहर ही नहीं लगायी, शपथ भी खायी हो। किताबों की गवाही में। भला किताबों की गवाही में लेखक झूठ कैसे बोल सकता है!

पत्रकारों का छोटा-मोटा दल 'संगे अमील' भी आया हुआ था और घेरने की एक मीठी सी कोशिश उनकी वहां भी हुई। कश्मीर के बारे में आप क्या सोचती हैं? कश्मीर दोनों मुल्कों के बीच झगड़े की जड़ है। बिना उसका समाधान हुए दोनों देशों के मध्य शांति, सौहार्द का मसला केवल सपनाभर है। कश्मीर पाकिस्तान के लिए स्विट्जरलैंड हैं। आपके पास तो अनेक सुरम्य पर्वतीय स्थल हैं। फिर कश्मीर के प्रति आप उदार क्यों नहीं हो जाते? यह सवाल यहां मुझसे बार-बार किया जा रहा है। पहली ही शाम स्वागत की चाय के घूंट भरते हुए 'जंग', 'डॉन', 'नेशन्स' के संवाददाताओं ने अवारी होटल के लाउन्ज में भी घेरने की चेष्टा की थी। बिना कोई द्वंद्व झेले हुए यही उत्तर दिया था मैंने कि यह मसला पूर्णतः राजनीति प्रेरित है। लेखक को इससे क्या लेना-देना। लेकिन शायद यह सच नहीं है। लेखक के जनसरोकार उसे किसी भी मसले पर निरपेक्ष नहीं रहने दे सकते। उसे निरपेक्ष रहना भी नहीं चाहिए।

तभी बातचीत के दौरान विश्व मानवधिकार संगठन की एक महत्त्वपूर्ण सदस्य आदिल से मुलाकात हुई। स्वयं आकर मिले (उनका पूरा नाम भूल रही हूं) उनका तर्क था- कश्मीर का हल है। भारत अगर आगे बढ़कर कश्मीर की आवाम को आत्मनिर्णय लेने की स्वतंत्रता प्रदान करे तो समाधान दूर नहीं। उनसे मैंने केवल यही कहा- यह बात वे पाकिस्तान से कहने की हिम्मत दिखायें। अपने कब्जे के कश्मीर को वह पहले मुक्त करें। 'आजाद कश्मीर' नाम दे देने मात्र से तो उनके नियंत्रण का कश्मीर आजाद नहीं माना जा सकता?

पत्रकारों के गोलबंदी के समक्ष मैंने अपनी नितांत निजी मत रखा। हालांकि

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

मेरा मानना है-न देश के बंटवारे से समस्याओं का समाधान हो सका है न आगे भी होगा। फिर भी 'आजाद कश्मीर' की स्वायतत्ता की रक्षा के ढोंग तले जो हिस्सा पाकिस्तान के कब्जे में है, है तो वह भारत का ही अंग, मगर पाकिस्तान के पास रहे। जो हिस्सा भारत के पास है, वह उसके पास तो है ही और रहे। ताकि अपने ही देश में विस्थापन की पीड़ा झेल रहे कश्मीरी पंडित अपने घरों को लौट सकें। पाकिस्तान को अब कश्मीर के मुद्दे को उछालना बंद कर देना चाहिए। अपनी दुराग्रही विस्तारवादी नीति से उसे हाथ खींचने की और भारत से सहज संबंध बनाने की महत्ती जरूरत है। उसे यह मानकर चलना चाहिए कि दुर्भाग्यपूर्ण बंटवारे में भारत ने अपनी देह का बहुत बड़ा हिस्सा पाकिस्तान के रूप में अपने मुस्लिम भाइयों को दिया है। इस्मत आपा जिंदा थीं तो अपने दो टूक अंदाज में अक्सर कहा करती थीं कि हमारे पुरखे जब इस देश में आये थे, तो जाहिर सी बात है, अपने संग पाकिस्तान लेकर नहीं आये थे। उनके इसी दृष्टिकोण ने उनकी वसीयत की इबारत भारत की मिट्टी के हक में लिखी थी-उन्हें दफनाया न जाये, जलाया जाये। विस्मय तब कम नहीं हुआ था जब स्वयं को प्रगतिशील कहने वाले उर्दू अदब के नामी-गिरामी शायरों और अफसाना इस्मत आपा की मैय्यत का बायकाट किया था और भर्त्सना करते हुए कहा था-आखिरी वक्त पगला गयी थीं इस्मत! सेक्यूलर सोच के अंतर्विरोधों का इससे बड़ा उदाहरण मिलना मुश्किल है। उनकी आखिरी इच्छा का विरोध करने वालों में ज्ञानपीठ एवार्ड विजेता जनाब अली सरदार जाफरी भी शामिल थे।

उर्दू की लेखिकाओं की चर्चा चलती है तो भारत से हमारे साथ आयी विदुषी डॉ. सैय्यदा हमीद ललककर कहती हैं- पाकिस्तान आती है तो उर्दू लेखन की बात करूं तो, एनी आपा और इस्मत आपा की चर्चा करना नहीं भूलती। दोनों लेखिकाएं पाकिस्तान में बड़ी इज्जत से पढ़ी जाती हैं। हिंदी के किन-किन लेखकाओं को यहां पसंद किया जाता है?

प्रतिक्रिया निराश करने वाली है। किश्वर नाहिद उग्र हो उठती हैं। उनका मानना है- हिंदी लेखिकाएं महत्त्वपूर्ण ऐसा कुछ भी नहीं लिख रही हैं जिसे पढ़ने की ललक पाकिस्तानी पाठकों में जगे। क्षेत्रीय भाषाओं में ज्यादा बेहतर लेखन हो रहा है जैसे अजित कौर, इंदिरा गोस्वामी, चित्रा मुद्‌गल। कुछ की हंसी फूट पड़ती है उनकी बात सुनकर, चित्रा हिंदी की लेखिका है। किश्वर नाहिद की हिंदी साहित्य को लेकर की गई टिप्पणी दुराग्रहपूर्ण लगती है। हिंदी में चारों ओर से

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

जितना वैविध्यभरा लेखन आ रहा है उसकी कल्पना पाकिस्तान में इसलिए संभव नहीं, क्योंकि अनुदित होकर जितना भी भारतीय साहित्य पाकिस्तान में पहुंच रहा है, उसमें ईमानदारी से प्रतिनिधि लेखन का चुनाव नहीं हो रहा। उन्हीं की रचनाएं पाकिस्तानी पाठकों के समक्ष पहुंच रही हैं जिनके स्वयं के मित्र वहां की पत्र-पत्रिकाओं में मौजूद हैं या भारत के उर्दू लेखक उनकी रचनाओं को वहां भिजवा अपने परिचितों और मित्रों को उपकृत कर रहे हैं। हिंदी विरोध भी इसका एक कारण हो सकता है। सांप्रदायिकता के खिलाफ होने वाली अभिव्यक्ति को वहां अधिक रुचि से पढ़ा जाता है। यह स्थिति कई कारणों से स्वाभाविक भी है, किंतु सांप्रदायिक संकीर्णता और उन्माद ही संपूर्ण भारतीय साहित्य का अर्क नहीं है। मुश्किलें तमाम हैं। पाकिस्तान में हिंदी से अनुवाद अपने आप में बड़ी समस्या है। पाकिस्तान में हिंदी अनुवादक नहीं मिलते बताया गया। मेरा भी अनुभव यही है। मुझसे जितने भी लोगों ने रचनाएं, लेख आदि मांगे, जब भी उनका अंग्रेजी अनुवाद ही मांगा। हालांकि कई पत्र-पत्रिकाएं भारतीय साहित्य पर अनेकों विशेषांक निकाल चुकी हैं और भविष्य में भी निकालना चाहती हैं। परस्पर रचनाओं का ईमानदारीपूर्ण आदान-प्रदान किए हुए बिना दोनों देशों की लेखक बिरादरी का एकजुट होना असंभव तो नहीं, थोड़ा मुश्किल निश्चय ही है।

पाकिस्तानी लेखकों को जितने चाव से भारत की तमाम भाषाओं में पढ़ा जाता है, वह पाकिस्तानी आवाम को भारतीय आत्मीयता और बंधुत्व से छटकने नहीं देता। पाकिस्तानी लेखक, क्रिकेटर, गायक, कलाकार इसका उदाहरण हैं। कलाकार, क्रिकेटर भारत के भी वहां बहुत लोकप्रिय हैं किंतु साहित्य के प्रति वह भाव नहीं महसूस हुआ, जो होना चाहिए था। लाहौर की प्रसिद्ध सरकारी यूनीवर्सिटी के विशाल समृद्ध पुस्तकालय में भी हिंदी की इक्का-दुक्का पुस्तकें, लगभग न के बराबर नजर आयीं। ऐसा क्यों? मैंने कवि मुन्नु भाई से सवाल किया था। सरस मना मुन्नू भाई का कटाक्षपूर्ण जवाब था- भारतीय अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता से खौफ खाते हैं। दूसरी बात उन्हें लगता होगा कि हिंदी की किताबें न तो यहां कोई पढ़ेगा न ही उन पर कोई कार्यादि शोध होगा। यह भी बताया गया, जो भी लेखक हिंदुस्तान के समर्थन में आगे आता है या हिंदुस्तान से सहमति जता सरकारी नीतियों का विरोध करता है, वह उनकी नजर में हिंदुस्तान का एजेंट हो उठता है। फ़ैज़ साहब के बाद फहमिदा रियाज़ इसका उदाहरण हैं। फहमिदा पाकिस्तान लौट चुकी हैं। मगर पता नहीं क्यों, शेरनी फहमिदा की आंखों के नीचे निरंतर गहराती कालिमा

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

इस संशय से उबरने नहीं देती कि सच बोलने की आजादी की कीमत छोटी-मोटी नहीं होती। किश्तों में अदा करनी पड़ती है लेखक को और वे किश्तें कभी चुकने को ही नहीं आतीं।

सच तो यह है कि यह केवल हमारा ही सोचना नहीं है। वहां के बंधु-बांधवों का भी सोचना है कि भारत से झगड़ा खत्म हुए बिना पाकिस्तान में लोकतंत्र की नींव मजबूत नहीं हो सकती।

लाहौर आकर लाहौर की गलियों, बाजारों, ऐतिहासिक स्थलों और वहां के बाशिंदों से मिले बगैर पलट लेना कोई पाकिस्तान आना हुआ। साहित्य, कला और चंपा के फूलों-सी महकती संस्कृति का लाहौर! पारंपरिक मुज़रों के नाज़ो अंदाज का लाहौर। कन्डों पर भूनती शकरकन्दों और गन्डेरियों से सजे ठेलों का लाहौर। बेलों, बूंटों से सजी बसों, तिपहियों, ट्रकों और तांगों का लाहौर। असगर वज़ाहत का नाटक '...जिसने लाहौर नहीं देखा वह जन्मा ही नहीं' नहीं भूलता। भीष्म साहनी की जीवंत स्मृतियों का लाहौर। बंटवारे के बावजूद करोड़ों हिंदुस्तानियों के दिलों में धड़कता लाहौर। तिल्ले, गोटे, झाले, झुमके, चुनरी, परान्दियों वाला, अनारकली बाजार! मैंने जिद ठान ली। रात का खाना हमें न किसी लेखक के घर खाना है, न 'अवारी होटल' में। अनारकली बाजार के किसी ठेले-ढाबे पर जाकर खायेंगे। अचरज कि सारे लेखकों ने एक सुर में सहमति जतायी। कार्यक्रम तय हो गया। पता नहीं, किश्वर नाहिद ने कौनसी जादू की छड़ी घुमायी कि पाया, भारतीय लेखकों के स्वागत-सत्कार में पुराना अनारकली बाजार दुलहन-सा जगर-मगर करता प्रतीक्षा में अपना आंचल बिछाये मिला। डिप्टी पुलिस कमिश्नर कमर खान ने स्वयं हमें अनारकली दिखाने का जिम्मा अपने सिर ले लिया था। उनके साथ थे मुस्तैद सिपाही जिनकी चौकन्नी सुरक्षा के घेरे में हमने बाजार के बाहरी चबूतरे पर लोकगायकों की मंडली के मुख्य लोकगायक के मुंह से जब वारिस शाह के दिल में पैंठते आत्मलीनता की भाव स्थिति में डुबोते गीत सुने तो प्रतीत हुआ जमाना जैसे उसी कालखंड में जा बैठे हों!

डिप्टी पुलिस कमिश्नर ने बाजार घुमाते हुए ऐतिहासिक गली-कूचों की विशेषता का वर्णन करते हुए विनम्र गुजारिश की- कोशिश कर हम सब साथ रहें। आप सब सहबान हमारे जान से ज्यादा प्यारे मेहमान हैं। दहशतगर्दों ने किसी को मामूली सी खरोंच भी दे दी तो खरोंच सीधा हमारे दिलों पर पड़ेगी। कूचों के भीतर रहते भरे-पूरे परिवारों ने हमें कौतूहल से नहीं देखा। अपनत्व की उमड़न उनकी

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

आंखों में साफ देखा जा सकता था एक परिवार में बच्चे का जन्मदिन मन रहा था। उन्होंने हमें खाने पर आमंत्रित किया। मुंह मीठा करना ही पड़ा। बच्चे को मैंने पचास का नोट आशीर्वादस्वरूप पकड़ाया तो उपस्थित जनों की आंखें नम हो आयीं। मुन्नवर खान साहब की पत्नी नोट लौटाने लगीं तो खान साहबन ने उन्हें झिड़कते हुए कहा, रख लो। हिंदुस्तान का नोट है। कमल कुमार उन्हें बताने लगीं। उनके पति अग्रवाल साहब का परिवार लाहौर का ही है। लाहौर उनका ससुराल है। रिश्ता छोटा-मोटा नहीं। कमल को उन्होंने अतिरिक्त खुलूस के साथ एक बार और मिठाई खिलाई।

अनारकली बाजार से मनोहरश्याम जोशी को अपने पोते-पोतियों के लिए कुछ उपहार खरीदना है। मैं भी अपने पोते-पोतियों के लिए पठानी सूट खरीदना चाहती हूं। कमिश्नर खान साहब का सुझाव होता है- आज आप सब जी भरकर घूम लें। इस्लामाबाद से वापसी में खरीद लीजिएगा जो भी चीजों खरीदना चाहें। वही बताते हैं। अनारकली के व्यापारी आप लोगों का वापसी में सम्मान भी करना चाहते हैं और अपनी ओर से आप सभी को स्मृति स्वरूप कुछ उपहार भी देना चाहते हैं।

जगर-मगर बाजार में साथ चलते हुए एक विनम्रता से कान में खुसपुसते हुए सिपाही खुर्रम ने मुझसे कहा, "बाजी अपनी बिंदी उतार लें तो अच्छा रहेगा। एकदम-से समझ में आता है कि आप हिंदुस्तानी हैं और सिरफिरों का सिर फिरने में वक्त नहीं लगता।" इंदिरा गोस्वामी की ओर नजर उठ जाती हैं। दिप-दिप करती उनके माथे की बिंदी की ओर देखते हुए कहती हूं, "आप साथ हैं भैया, तो फिर डर कैसा!" घर में छिपे दुश्मनों से खुर्रम अपरिचित नहीं है। अपरिचित है अंधेरों को अपने जवान सीने में दुबका लेने वाले भटके नौजवान। उन्हें भटकाने और खरीदने वालों की कमी न इस देश में है, न मेरे अपने।

-'तो फिर लगाए रखिए बाजी!' बात करते चलते खुर्रम की टोहती आंखें टकराते भीड़ के रैलों को तौलती चल रही हैं। रक्षा को सन्नद्ध।

साथ में ऐसा कोई उपहार मैं नहीं लाई हूं, जिसे अपने भाई खुर्रम को दे पाती। राखी बांधी नहीं उसे, मगर वह राखी का मूल्य चुकाने को तत्पर है। हुमायुं मरे कहां है। हुमायुं कभी मरते भी नहीं। यह कौन इस वक्त साथ चल रहा है हमारे!

पुराने अनारकली बाजार की मुख्य सड़क से बांयी ओर लगे एक बड़े-से ढाबे में कमिश्नर साहब हमें खाने के लिए बैठा देते हैं। मेज पर एक के बाद एक लजीज खानों के रखे जाते डोंगे, पानी का गिलास रखने तक की जगह नहीं छोड़ते। कितना

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

खिलाते हैं ये लोग! पीठ पीछे से अचानक वायलियन पर उठी एक गहरी संजीदा धुन अपनी ओर आवाज देती है। चकित चेहरे मुड़कर उस धुन से मुखातिब होते हैं- "इक प्यार का नगमा है, मौजों की रवानी है। ज़िंदगी और कुछ भी नहीं, तेरी मेरी कहानी है।"

हमारे पीठ पीछे हौले-हौले चहलकदमी करते हुए वायलिन पर एक कलाकार भाई एक के बाद एक हिंदी फिल्मों के पुराने मनमोहन अविस्मरणीय गीत बजा रहे हैं। पूछने पर बताते हैं- पूरा पाकिस्तान लताजी का दीवाना है। मीडिया और फिल्मों पर सियासत चाहे जितने प्रतिबंध लगा ले। बेनजीर से लेकर नवाज शरीफ तक हिंदी फिल्मी गीतों को सुने बगैर रात पलक नहीं झपकाते। उनका अंदाजा है, मुशर्रफ साहब हिंदुस्तान के खिलाफ चाहे जितनी आग उगलते रहें, उन्हें यकीन है कि वे भी हिंदी फिल्मी गीतों को सुने बगैर नहीं सोते होंगे। यहां खाना खाने आने वाले पाकिस्तानी उनसे रोज शाम हिंदी फिल्मों के गीतों की धुनें ही सुनना चाहते हैं।

मुझे याद आया। बच्चों के रेडीमेड कपड़ों की बड़ी-सी दुकान के मालिक अकरम ने क्षुब्ध होकर कहा था, इन सियासतदानों ने अपनी कुर्सी की खातिर व्यापारियों का व्यापार चौपट कर दिया है। हमारी दुकानें खाली ही इसीलिए हैं कि हमारे पास भारत से माल नहीं आ पा रहा। खपत भारतीय माल की है। आम आदमी की जेब की पहुंच के भीतर होती हैं उनकी कीमतें। दबी जुबान से मैंने अकरम से सवाल किया था- कश्मीर के बारे में उसका अपना मत क्या है?

सरकार पहले अपने लोगों को तो रोटी मुहैया करे! भूख, गरीबी ने गांव में किसानों की कमर तोड़ रखी है। कश्मीर और कश्मीरियों का जिम्मा ऊपर से ओढ़ लिया है सरकार ने। हैदराबाद में उसके मामू हैं चारमीनार के पास। तीन बार वह हैदराबाद जा चुका है। वहां तो गरीबों की झोंपड़ी में भी एंटीना लगा देखा है उसने। गरीबी में भी जमीन-आसमान का अंतर है हिंदुस्तान और पाकिस्तान की। यहां नौजवान नौकरी के लिए हिंदुस्तान जाना चाहते हैं। एक किसान के घर में खाने वाले बीस-बीस लोग हैं। कहां से खिलायें उन्हें? कैसे पढ़ायें! अमेरिकी पैसे से आप चमचमाती सड़कें और लुभावनी इमारतें बना सकते हैं, आम आदमी की भूख नहीं मिटा सकते। भूख से बहलाने और अपनी औकात छिपाने के लिए इन्होंने हिंदुस्तान को अपना जबरन दुश्मन बना रखा है। जनता बेवकूफ नहीं। सब समझती है बाजी! करें क्या?

इसके विपरीत घड़ियों के चमचमाते शोरूम के मालिक हुसैन साहब खफा हो कहते हैं-हिंदुस्तान ने पाकिस्तान के बारे में झूठ-मूठ दुर्भावनावश उड़ा रखा है कि

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

हमारे यहां सुई से लेकर माचिस तक बाहर से आती है। हम सुई नहीं, तोपें भी बना रहे हैं। हिंदुस्तान के मन में खोट है। वह हमें जीने नहीं देना चाहता। उसने पवित्र पाक में दहशतगर्द भेज रखे हैं।''

19 अक्तूबर 2003, इस्लामाबाद, होटल होली डे इन, 10:30 रात

'शीशमहल' हॉल में चर्चा का विषय है, 'हाउ दि राइटर्स कैन प्रमोट दि अट्मसफियर ऑफ पीस।'

ठहरे हुए पानी में कंकड़ियां दोनों ओर से फेंकी जा रही हैं। सूरत बदलनी है। बिना आलोड़न हुए सूरत नहीं बदल सकती। निर्मम होकर सर्जकों को स्वयं को कठघरे में खड़ा कर आत्मविश्लेषण करना होगा। परिस्थितियों की मांग पहचाननी होगी। भूमिका सुनिश्चित करनी होगी। देश के लेखक, कलाकार, संस्कृतिकर्मी अपना कर्तव्य भूल बैठे हैं। पाकिस्तान में जिस तरह की अभिव्यक्ति दमन है-विरोध करना होगा उसका। यह नक्शा बदल इसीलिए नहीं रहा कि अभिव्यक्ति की आवाजें संगठित नहीं हैं। मुश्ताक अहमद यूसुफी अपनी सधी गहरी सोच को हमसे बांटते हैं तो उनकी सोच की आंच से न डॉ. आफताब अहमद दूर नजर आते हैं, न खादिम हुसैन साहब। शांति के बिना विकास का लक्ष्य अधूरा है और उसे पाना नामुमकिन।

अनुभव हो रहा है। अभिव्यक्ति पर लगी पाबंदी को जो तोड़ फेंकने का साहस करता है, वही अंतस में उबल रहे असंतोष को उजागर कर पा रहा है।

विचित्र लगता है पाकिस्तानी हुक्मरानों का तर्क। शांति के लिए जंग। हिंदुस्तान से बिना जंग शांति अर्जित नहीं की जा सकती! दरअसल बिना जंग सत्ता को बनाये नहीं रखा जा सकता। मिलिटरी शासन की यह सबसे बड़ी मजबूरी है। सब सच जानते हैं। देश की आय का लगभग पौना हिस्सा मिलिटरी को पालने में खर्च हो रहा है। जो पैसा देश के विकास में, आमजन की बुनियादी जरूरतों को पूरा करने में लगना चाहिए था, नहीं लग रहा। प्रमुख समाजसेवी संस्थाएं उन्हीं की आर्थिक सहायता पर अवलंबित हैं और निम्न मध्यवर्ग, निम्नवर्ग, पिछड़ी जन जातियों (रूढ़ कबीलों) के जीवन उत्थान के लिए पूरी प्रतिबद्धता से काम भी कर रही हैं। अनेक जटिलताओं और प्रतिकूलताओं से जूझते हुए। किंतु विडम्बना यही है कि उपलब्ध संसाधन पर्याप्त नहीं है।

वरिष्ठ लेखक, संपादक अहमद नदीम कासमी जी को इस कार्यक्रम की अध्यक्षता करनी थी। रुग्णता के चलते उनका आना संभव नहीं हो पाया।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

चाय पर उन्हीं चेहरों में से कुछ चेहरे अतिथि लेखकों की आतिथ्यगिरी की जकड़ से मुक्त हो मुशर्रफ की तारीफ में आगे आते हैं। मुशर्रफ देश के काबिल जनरल हैं। भ्रष्टाचार को पाकिस्तान से जड़मूल नष्ट करना चाहते हैं। उनकी पत्नी हिंदी फिल्में पसंद करती हैं। बुर्का नहीं पहनतीं। मुल्ला-मौलवियों का कठमुल्लापन उन्हें बिलकुल पसंद नहीं। पाकिस्तान में ही एक तबका उनका विरोधी हो रहा। मानता है-कि जनरल साहब हिंदुस्तान के हिमायती हैं। सवाल उठता है। अगर वाक्या वे हिंदुस्तान से प्रेम और शांति के हिमायती हैं तो अप्रत्याशित कारगिल युद्ध पर क्यों उतर आये? लोकतंत्र का गला घोंट सत्ता पर क्यों काबिज हो गये? गुस्सा है जनरल के दिल में। इंदिरा गांधी ने पीठ पीछे छुरा नहीं मारा बांग्लादेश को आजाद करवाकर? इंदिरा गांधी को अपनों ने ही मार डाला, अच्छा हुआ। वे जिंदा होती तो पाकिस्तान के शेष वजूद के लिए सबसे बड़ा खतरा होतीं। रहा सवाल नवाज शरीफ का तो नवाज शरीफ भ्रष्ट थे। उनके प्रधानमंत्री बनते ही पूरे खानदान के पास मोटी-मोटी जायदादें आ गयीं। पक्ष-विपक्ष आपने-सामने तन रहे।

वाजपेयी जी बड़े सज्जन हैं। दिल के अच्छे। 'पाक इंडिया पीपल्स फोरम फॉर पीस अंड डेमोक्रेसी' के सदस्य मि. इरफान सिद्दीकी कहते हैं। उनके घर में हम सभी रात्रिभोज के लिए आमंत्रित हैं। डॉ. जावेद इकबाल की भांति उन्होंने भी इस्लामाबाद के अधिकांश लेखक, बुद्धिजीवियों को हम लोगों से मिलवाने के लिए जोड़ लिया है। भारतीय राजदूतावास से डिप्टी हाई कमिश्नर राघव जी सपत्नीक आये हुए हैं। श्रीमती राघव को बंगाल की टांगाइल पहने देखकर परम प्रसन्नता हुई। किश्वर नाहिद ने मेरी जिज्ञासा पर कि भारतीय दूतावास ने भारतीय लेखक दल को चाय पर नहीं बुलाया? नाराज होकर कहती हैं- बहुत इसरार किया भारतीय दूतावास से कि आप सब को दूतावास आमंत्रित करें, मगर उन्होंने उत्सुकता जरूर दिखायी पर हामी नहीं भरी। हम बुला रहे हैं आपके राजदूत मेनन साहब को अपने घर सपत्नीक। मुलाकात हो सकेगी आप सबसे उनकी। 'पेन एंड पीस' कार्यक्रम को हम किसी भी दुराग्रह से बांधकर नहीं चलेंगे। दुराग्रह धोने-पोंछने हैं हमें, अजित कौर भी खिन्न हुईं।

मुझे लगा भारतीय राजदूतावास ने भारतीय लेखक दल को 'चाय' या 'भोज' पर यही सोचकर आमंत्रित नहीं किया होगा कि 'पेन एंड पीस' कार्यक्रम के तहत आये भारतीय लेखक दल पर किसी तरह के राजनीतिक दबाव-प्रभाव का आक्षेप न लगे।

फहमिदा रियाज़ से मिलना हुआ। कराची से सुबह ही इस्लामाबाद आ गयी

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

थीं। ताकि इस्लामाबाद में भारतीय लेखक दल की अगवानी कर सकें। 'होली डे इन' के प्रांगण में मिली तो बड़ी देर हम गले लगे रहे। उनके शब्द पुलकित कर गये। तुम्हारा नाम देखकर मैं तुमसे विशेष रूप से मिलने आयी हूं। फहमिदा के पिछले भारत प्रवास के दौरान मैं जामियानगर उन्हें और उनकी बहन को लेने गयी थी ताकि अपनी 'स्त्री शक्ति' संस्था की सदस्याओं से उनकी भेंट करवा सकूं।

'कराची चलो मेरे साथ!' फहमिदा कहती हैं तो मैं उदास हो जाती हूं। कराची पहले 'पेन एंड पीस' के कार्यक्रम में शामिल था। लाहौर में ही सूचना मिली कि कराची जाना संभव न हो सकेगा। दंगे भड़के हुए हैं। सुरक्षा कारणों से वहां का कार्यक्रम रद्द कर दिया गया है। इस्लामाबाद से दूर नहीं है कराची। केवल दो-अढ़ाई घंटे का रास्ता है। कराची के बदले मरी जाया जायेगा। पाकिस्तान का शिमला है मरी! मरी के एक छोर से आजाद कश्मीर दिखायी देता है।

फहमिदा महेन्द्र के बारे में पूछती हैं, उनकी खूबसूरत पत्नी सुशीला के हालचाल भी। महेन्द्रकुमार मिश्रा हम दोनों के पारिवारिक मित्र हैं। मैं बताती हूं। आने से पहले मैंने महेन्द्र को फोन किया था-फहमिदा का कोई फोन नंबर आदि मिलेगा? महेन्द्र ने उदास स्वर में कहा था, पता नहीं कहां है? बहुत दिनों से उसका ई-मेल नहीं आया। फहमिदा कहती हैं-''महेन्द्र जैसे प्यारे मित्र को भूल पाना मुश्किल है। हिंदुस्तान मुझे बहुत प्यार करता है, चित्रा।''

20 अक्तूबर 2003, इस्लामाबाद, रात्रि 10:20, 'होली डे इन'

इस्लामाबाद को चुराया जा सकता है! हरी-भरी वादियों की गोद में सिमटा सुगठित शहर! मरी की पहाड़ियों की पीठ पर से उतरती हवाएं इस्लामाबाद को अपनी खुनकभरे आलोड़न से थपकाती फिजा में सरसता भरती रहती हैं। पता नहीं उन हवाओं को तानाशाही के माहौल में अल्हड़ सरसराते हुए घूमना रास आता होगा भी या नहीं? या वो अपना धर्म नहीं छोड़तीं। या उम्मीद पर जी रही हैं कि कभी न कभी मिलिटरी शाही की आड़ में चल रहे लोकतंत्र के नाटक की नौटंकी खत्म जरूर होगी। पिछली रात इरफान सिद्दीकी साहब ने आवाम में इस बात को लेकर बढ़ रहे असंतोष को बांटा था-मुशर्रफ की अनेक मायनों में प्रशंसा करते हुए, इस्लामाबाद में आम व्यक्ति अपनी रिहायश के लिए जमीन (प्लाट) नहीं ले पा रहा। प्रत्यक्ष रूप से कोई ऐसा प्रतिबंध नहीं है, लेकिन अंदरूनी सच यही है कि प्लाटों की बिक्री में मिलिटरी वालों को प्रमुखता दी जा रही है। यही हाल रहा तो कुछ वर्षों बाद इस्लामाबाद मिलिटरी वालों का शहर कहलायेगा।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

इरफान सिद्दकी साहब हिंदुस्तान और पाकिस्तान के आवाम की दोस्ती को जगाये रखने और उसे प्रगाढ़ बनाये रखने के प्रबल हिमायती हैं और अपनी संस्था के माध्यम से उस दिशा में गहरे प्रयत्नशील हैं। उनकी सोच एकदम स्पष्ट है। भीतर और बाहर दोनों।

इंतजार हुसैन साहब से मिलना उपलब्धि हुई। जातक पर उनके साहित्य कर्म ने हमेशा उनके लेखन के प्रति भारतीय सुधी पाठकों को आकर्षित किया है। 'ह्यूमन ट्रामास अंड दि प्रोसेस ऑफ ट्रुथ अंड रिकन साइलेशन' (Human tnatuionas and the process of truth and neconciliation) पर उनके समन्वयवादी विचारों को सुन कर महसूस हुआ कि लेखक के लिए पहली शर्त है कि वह अपने दिमाग-ओ-दिल की खिड़कियों को खुला रखे। बताया गया कि इंतजार साहब को हिंदुस्तान अपना दूसरा घर लगता है और वे वहां पहुंचने का कोई मौका नहीं चूकते। यह भी महसूस हुआ कि उनके समकालीन कई लेखकों और समीक्षकों को उनके जातक प्रेम और उदारवादी दृष्टिकोण पर खिन्नता है। मंच पर से एकाध विद्वान ने अपने वक्तव्य में इसका इजहार भी किया। उनके शालीन मितभाषी व्यक्तित्व पर उन बातों का कोई असर नहीं पड़ा हो-यह भी नहीं आभासित हुआ। इंतजार साहब ने बेबाकी-से कहा-तकनॉलोजी की ताकत से नयी बर्बरियत आयी है। सैय्यदा का कहना था-विश्व का इतिहास ट्रॉमा का इतिहास है। अजित की टिप्पणी है- ''आदमी पढ़-लिख जाता है तो सवाल करेगा ही। खतरा यह है कि पढ़े-लिखे लोगों ने भी सरकार को सब कुछ सौंप दिया है।''

दोपहर में जब इरफान सिद्दीकी साहब की गाड़ी में आसमान छूने को व्याकुल हरियाली से घिरे घुमावदार पहाड़ी रास्ते को छूते हुए हम 'दामन ए कोह' पहुंचे तो लगा धूप-छांह से आंख-मिचौनी खेलती घाटी का वह कोना बांह पसारे हमारी प्रतीक्षा में है। 'दामन ए कोह' में हमारे मेजबान थे मि. अनवर जहांगीर और 'जी.एम. शालीमार रिकॉर्डिंग कंपनी'।

'दामन ए कोह' से लौटने का मन ही नहीं हो रहा था। ऐसा नहीं हो सकता कि कोई कानों में चुपके से फूंक दे कि आप यहां जब तक जी चाहे रह सकती हैं। अपनी कागज-कलम के साथ।

इरफान सिद्दीकी साहब कहते हैं। लड़ रहे हैं कि सरहदों की कंटीली फेंसिंग टूटे और दोनों देशों के लोग जब जी चाहें, एक-दूसरे के पास आ-जा सकें, रह सकें। हमारे घर के दरवाजे आपके लिए खुले हैं। मरने से पहले लोग अपनी छूटी देहरियों से मिल सकें। अपने बिछड़े रिश्तों से जुड़ सकें। शादी-ब्याह हो सकें।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu
मेरी बेटी दिल्ली में बसंत कुंज में रहती है। दिल्ली आऊंगा तब आपसे संपर्क करूंगा। अजित कौर ने जो रास्ते खोले हैं-हम उन्हें हरगिज बंद नहीं होने देंगे।

मुझे अपनी अम्मा की बात याद हो आयी। चलने से पहले पूछा था उनसे। पाकिस्तान से तुम्हारे लिए क्या ले आऊं?

सेंधा नमक! वहां नमक के पहाड़ हैं। बंटवारे से पहले पूरा हिंदुस्तान वही नमक खाता था। गांव में उसे खड़ा नमक भी कहते थे। आजादी के बाद ऐसे दुर्दिन आये कि समंदर का नमक खाना पड़ रहा है। व्रत में अभी भी वही सेंधा नमक खाते हैं। समंदर का नमक शाकाहारी नमक नहीं होता।

लाहौर से इस्लामाबाद आते हुए रास्ते में देबू की वातानुकूलित कोच से नमक के पहाड़ देखे थे। 'पेन एंड पीस' के प्रबंधन से जुड़ी नुसरत से कह रखा था। नमक के पहाड़ आते ही हमें वह सूचित कर दे। कवयित्री समीना अहमद से जब मैंने अपने मन की बात कही कि मैं यहां से सेंधा नमक तीन-चार किलो खरीदकर ले जाना चाहती हूं। मेरी अम्मा सभी रिश्तेदारों को पाव-पाव भर नमक के ढोके उन्हें उपहारस्वरूप भेंट करना चाहती हैं तो उनकी गहरी काली आंखों में विस्मय प्रश्न-सा खिंच आया-"आपकी अम्मीजान हमारा नमक खायेंगी?" मेरा जवाब था-"खाना न होता तो अम्मा भला मुझसे नमक लाने के लिए क्यों कहती? बंटवारे से पहले आखिर हमारा नमक अलग थोड़े ही था।"

इस्लामाबाद की दुकानों में घूमते हुए लगा कि हम कनाट प्लेस में घूम रहे हैं।

हम दुकानों पर 'बोसकी' (पाकिस्तान) कपड़ा ढूंढ रहे थे। मगर दुकानें भरी हुई थीं चीनी कपड़ों से, चीनी खिलौनों से, नेपाली शॉलों से। कश्मीरी शॉलें बेहद महंगी हैं। मैंने बहू शैली के लिए पांच सौ की एक कलात्मक शॉल खरीदी। इंदिरा ने देखा तो उन्होंने भी उससे कम कीमत की वैसी ही तीन-चार शॉलें अपने रिश्तेदारों के लिए खरीदीं। अजित कहां पीछे रहने वाली थी। पाकिस्तानी अजीजों के लिए वह हिंदुस्तान से बक्साभर सेमीपश्मीना की खूबसूरत शॉलें उपहार में लायी थीं। पाकिस्तान से अपने घर के मित्रों के लिए कैसे कुछ न ले जाती! "प्यार में मैं पैसे का मुंह नहीं देखती। खाली हाथ दोस्तों को क्या जवाब दूंगी।" जिस दुकान से मैंने शैली के लिए शॉल खरीदी, फुसफुसाकर उसने मुझसे पूछा- "बाजी, हिंदुस्तान से आप हमारे लिए कुछ नहीं लेकर आए? लखनऊ चिकन और बनारस की साड़ियां ले आते, तो हम खरीद लेते। यहां के लोग वहां के कपड़ों के लिए तरसते हैं।"

पुरानी अनारकली बाजार के अरकम की पीड़ा याद हो आयी।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

रात खाना फ्रेंचकट दाढ़ी रखे हुए सजीले व्यक्तित्व के मालिक नईमपाशा जी के खूबसूरत बंगले में था। वास्तु का विशिष्ट नमूना। क्यों न होता! नईम जी बड़े अच्छे चित्रकार ही नहीं हैं, प्रसिद्ध वास्तुकार भी हैं। नईमजी ने कई विदेशी पत्रकारों को भी भारतीय लेखक दल से मिलवाने के लिए आमंत्रित कर रखा था। उन्होंने बताया–'शराब सार्वजनिक रूप से पाकिस्तान में पीना मना है। हम पीते हैं घरों में तो पाकिस्तानी शराब ही पीते हैं। देश की बनी। शराब हमारे यहां बनती है तो उसे प्रोत्साहन दिया ही जाना चाहिए।'

सुनकर अच्छा लगा। हमारे यहां पैसे वाले लोग इस बात का ख़याल कहां रखते हैं!

'मुझे आपको सुनकर बहुत अच्छा लगा। दरअसल मुसलमान कौम की उन्नति और आधुनिकीकरण के लिए बारह–चौदह सौ वर्ष पुराने इस्लाम की नवीन व्याख्या जरूरी है।' मेहमान निलोफ़र अंग्रेजी में कहती हैं। मुझे किश्वर का वाक्य स्मरण हो आता है–'इस्लाम की व्याख्या का अधिकार सिर्फ मर्दों को ही नहीं दिया जा सकता।'

कुछ हो जरूर रहा है। चिंतन, मंथन और चुनौती तीनों पर धार चढ़ रही है। गति धीमी नहीं है। भीतर दहकते लावे की शक्ल में है।

प्रसिद्ध शायर अहमद फराज़ साहब कुछ रूठे हुए–से नजर आये। उन्हें क्या पता कि उनका रूठना हम सब लोगों को कितना दुखी और बेचैन कर रहा है। नेशनल आर्ट गैलरी की सीढ़ियों में उनसे संक्षिप्त भेंट हुई।

अजित भी उनसे कुछ रुष्ट लगीं। बुदबुदाई–''हिंदुस्तान बुलाते हैं तो हम बेसुध हो फराज को अपनी नाक बना लेते हैं। खेमेबंदी की पैंठ इस कदर!''। सबको इकट्ठा देखने ही तो हम यहां आए हैं। सोच न चाहते हुए भी सिर उठाता है। आमीन!

21 अक्तूबर 2003, इस्लामाबाद, होटल 'होली डे इन', रात 10:12 पर

फातिमा हसन (डायरेक्टर, पब्लिक रिलेशन्स विंग कम ट्रेनिंग एंड रिसर्च इंस्टीट्यूट) का हिंदुस्तान में बिलकुल नाम नहीं सुना, किंतु उन्हें जब संगोष्ठी बोलते हुए देखा तो महसूस हुआ, मुस्लिम समाज की विषमता पर उनका गहरा अध्ययन ही नहीं है, उस पर नितांत अपनी सोच भी विकसित की है उन्होंने। स्पष्टता और निर्भयता उनके व्यक्तित्व का प्रमुख गुण लगी। उन्हें 'दि जेंडर ओरियेंटेड इश्यूज़ इन दि लिटरेचर ऑफ इंडिया–पाकिस्तान' पर बोलना था। लगा,

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu
बोलने के लिए उनके पास बहुत कुछ है और उस सुविचारित बहुत कुछ को सुनने वालों तक पहुंचाने की उनकी प्रबल इच्छा भी है। एक कमी अवश्य खटकी अध्ययन तुलनात्मक संतुलन का अभाव। पाकिस्तानी साहित्य को वह विषय के अनुरूप जितनी गहराई से उद्धृत कर सकीं, भारतीय साहित्य की अल्पाजता विषय के न्याय में आड़े आयी। दोष फातिमाजी का नहीं लगा। भारतीय साहित्य उन तक पहुंचता ही कितना है। 'फाउंडेशन ऑफ सार्क राइटरस अंड लिटरेचर' संस्था की प्रमुख अजित कौर जी से मेरा निवेदन हुआ–'इस मुद्दे को उठाने वाली पाकिस्तानी और भारतीय कहानियों को संकलित करने का प्रयास होना चाहिए ताकि समस्या को सही परिप्रेक्ष्य में आंकलित किया जा सके। पाकिस्तानी महिला कथाकारों की कहानियों का भी एक संकलन पृथक रूप से प्रकाशित किया जाना चाहिए, ताकि पाकिस्तानी महिला कथाकारों की नजर में पाकिस्तान में महिलाओं की वास्तविक स्थिति और उनके आंतरिक और बाह्य संघर्षों का मूल्यांकन हो सके।' अजित जी ने प्रस्ताव को सहर्ष स्वीकारा। उनकी 'फाइन आर्ट अकादमी' प्रकाशित जरूरी इन पुस्तकों को। तालियों की गड़गड़ाहट ने उस पर अपनी सहमति की मुहर लगायी।

मंशायाद से बात नहीं हो पायी। प्रेस से ऐसी संगोष्ठियों को दूर रखना चाहिए। प्रचार अवश्य हाथ लगता है, किंतु गंभीर संवाद का सुअवसर हाथ से छूट जाता है। पाकिस्तानी प्रेस की संवेदनशील रिश्तों पर हर दिन मात्र कश्मीर की रट ने उबाया। 'साहित्य और भारतीय समाज' विषय पर भी बात की जा सकती थी। भारतीय लेखकों से राजनीतिज्ञों की भांति व्यवहार उचित नहीं। आप कुछ जान पाते हैं और बहुत कुछ जानने-समझने का संयोग से हाथ आया अवसर खो देते हैं।

जोशीजी की तबियत ठीक नहीं। दोपहर में भी उन्होंने कुछ नहीं खाया। पेट ठीक नहीं। 'The concept of liberalism versus fundamentlism in literature' पर बहुत बढ़िया बोले। वैसे भी उनकी टिप्पणी दो टूक होती हैं। उन्हें लगता है और सही भी लगता है कि जैसा हम अन्यों से अपेक्षा करते हैं। स्वयं भी उस पर अमल करने की पहल करें।

डॉ. तारिक रहमान दस्तकें जरूरी समझते हैं। दस्तकें दी जाती रहनी चाहिए, मगर दस्तकें पहले अपने भीतर दी जानी चाहिए। तभी केवल शब्द निहत्थे नहीं होते। संकीर्णताओं और जड़ताओं के खिलाफ सन्नद्ध भी तभी हो पाते हैं हम। यह मेरा मानना है। असहमत भी हो सकते हैं मुझसे लोग।

कल पूरा दिन घूमने के लिए स्वतंत्र होगा। मरी जायेंगे सब लोग जिलानी बानो आपा अपनी बहू के लिए वेलवेट का सूट खरीदना चाहती हैं मरी से। हैदराबाद में कपड़ा बहुत अच्छा मिलता है मगर वेलवेट के सूट नहीं मिलते।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

दूर-दूर से सुनने-भेंटने आये लोग बिछुड़ रहे हैं। एक उदासी कुनमुना रही है। अपनों से दूर होने की उदासी। क्यों लग रहा है ऐसा कि हम अपने आत्मीयों से बड़ी जल्दी जुदा हो रहे हैं। काश! कुछ और समय होता हमारे हिस्से में।

किश्वर हल्ला मचा रही हैं। जल्दी मिलना खत्म कर हम बस की ओर लपके। 'फोक आर्ट म्यूजियम' देखने जाना है। बस में पंजाबी टप्पे शुरू हो जाते हैं। नुसरत, ताहिरा, अब्दुल्ला, निलोफर बेग सभी किश्वर का साथ देते हैं। किश्वर कहती हैं-'वह काले सूट वाला आदमी सीआईडी का आदमी है। हमारी गतिविधियों पर नजर रख रहा है। भारत में भी हमारे लोगों पर ऐसे ही चुभती नजर रखी जाती है। हैं न तमाशे। जिन पर रखी जानी चाहिए, नहीं रखी जाती।' गलत नहीं कह रही किश्वर।

चमचमाती चिकनी सड़क पर बस उड़ रही हो जैसे। अमेरिकी पैसों की चमक है। अमेरिका डाकू है। आपके घर को लूटकर आपके घर को भरने वाला। कब चेतेंगे हम! प्रतिक्रिया में उबलता गुस्सा हाथ लगता है। हर पढ़े-लिखे समझदार आदमी के मन में अमेरिका को लेकर गहरी घृणा है। इराक में अमेरिकी सेनाओं के अविश्वसनीय तांडव ने उसे और हवा दी है।

अद्भुत म्यूजियम है। इतनी जीवंत मानव प्रतिमाएं कहीं देखने को नहीं मिलीं। कहीं पंजाब का किसान जीवंत हो उठा है तो कहीं कच्छ का कोई घर-आंगन!

गेट का चौकीदार मुश्ताक आलम फुसफुसाता है-''मेरे मामा फुर्रूखाबाद में अब भी हैं। खेती करते हैं। मेरी अम्मी को अब्बा छोड़कर चले आए थे। मुझ नादान को साथ ले आए थे जबरन! खबर मिलती रहती है। अम्मी मुझे देखने की आस में अब भी जिन्दा हैं!''

22 अक्तूबर 2003, इस्लामाबाद, रात 10:30, होटल 'होली डे इन'

और...और मैं उस बेटी को कैसे भूल पाऊंगी, जिसे मैंने मंच पर से हॉल में बैठे हुए देखा था। समन अजीज को! जूही के फूलों-सा मासूम कोमल चेहरा, चुन्नी में लिपटा। बरबस अपनी ओर खींचता। पी.टी. में पश्तो की उद्घोषिका है। मेरे मंच से उतरते ही सकुचाती समन अजीज मेरी ओर बढ़ती है। मालूम नहीं क्या होता है। बांहें फैलाकर मैं उसे सीने से लगा लेती हूं। समन कहती है-आप बोलती नहीं, दिल को छूती हैं। जख्मों पर फाहे महसूस होते हैं। दो दिनों से आपको सुन रही हूं। सच कहूं तो आपको भूल नहीं पाऊंगी। येऽऽये मैं आपके लिए कुछ लायी हूं। मना

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu
न कीजिएगा। बहुत खुलूस और प्यार से लायी हूं। समन प्लास्टिक बैग से एक कलात्मक पेंटिंग और उसी तर्ज का कलमदान निकालकर दिखाती है। यह ईरानी पेंटिंग है। मुझे लगा आपको पसंद आयेगी। समझ में नहीं आया। आपके लिए क्या लूं! पसंद आयी?

''एक चीज और आपके लिए। मैंने आप पर पश्तों में एक कविता लिखी है। उसे पढ़कर सुनाऊं!'' वह कविता पढ़ती जाती है और अर्थ भी बताती चलती है।

'क्या मैं इतनी अच्छी हूं समन!' मेरी भर आयी आंखें उसकी हथेलियों पर चू आयीं। अर्पणा कितने चेहरे बदल लेती है! इतने चेहरे धर सकती है वह, पहले कभी अंदाजा नहीं हुआ।

इस कविता के पीछे अपना पता लिख दो, समन!

समन कविता के पीछे पता लिख रही है।

कविता लेकर मैं अपने पर्स में सहेज लेती हूं। और उससे कहती हूं, यह कविता तुमने मेरे नाम नहीं लिखी है, समन। पाकिस्तानी बेटी की यह कविता समस्त भारतीय मांओं के नाम है। तुम्हारी यह कविता मैं उन तक पहुंचाऊंगी समन! जिम्मा है मेरा।

मेरी छाती से लगी समन सुबक उठी है...।

23 अक्तूबर 2003, लाहौर, रात 10:30, होटल अवारी

लाहौर लौट आएं हैं। उसी कमरे में। कुछ पीछे क्यों छूटा जा रहा है हमारा!

सामान सरिया लिया है और कॉफी बनाकर घूंट भर रही हूं। नुसरत की भांति मोहनसिन भी 'पेन एंड पीस' के यात्रा प्रबंधन से जुड़ा हुआ। सब गीले हैं, मोहसिन ने कहा था-इतनी ढेर किताबें कैसे ले जायेंगी? ठहरिए एक काम करता हूं। होटल के मैनेजर कासिम साहब से बात करता हूं। पुट्ठे का डिब्बा मिल जाये तो सारी किताबें उसमें पैक कर दूंगा। सुबह सब हो जायेगा, चिंता न करें, बल्कि कई डिब्बों का इंतजाम करना होगा। सभी के पास किताबें हैं। उर्दू पढ़नी आती है? नहीं आती है तो इन्हें पढ़ेंगी कैसे? 'छूकर भी तो पढ़ना होता है।'

नुसरत और मोहसिन हमें हमारी हर समस्या का हल लगते हैं।

'यह है मेरी प्रेमिका पत्नी की तस्वीर।' मोहसिन पर्स खोलकर पत्नी की तस्वीर दिखाते हैं। खिले हुए-से।

''और यह है आपका सेंधा नमक। ले जाकर अपनी अम्मीजान को दे दीजिएगा। पर्स मत खोलिए। मेरी ओर से है। दिल्ली जल्दी आऊंगा। 'एक्सन एड' की दिल्ली

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

में भी ब्रांच है। नमक खाकर ही नमक के पैसे वसूलूंगा। सस्ते में नहीं छूट सकतीं आपा आप!''

24 अक्तूबर 2003, रात 8:20, गोल्डन टैम्पल शताब्दी

भेंट की ख्वाहिश लिए लौट रही हूं लाहौर की 'हीरामंडी' में रह रहे वेश्या पुत्र सुप्रसिद्ध चित्रकार इकबाल हुसैन साहब से।

हमारी बस इच्छोगिल नहर के किनारे-किनारे वाघा बार्डर की ओर बढ़ रही है। बस की खिड़कियों से दिख रहे थे मैले पठानी सूटों में अपने खेतों में काम करते किसान! उनसे मुलाकात नहीं हो पायी। पूछना ही भूल गई इस्लामाबाद के 'फोक आर्ट म्यूजियम' के चौकीदार मुश्ताक आलम से। भारत में तो उसके मामा खेती किया करते हैं। यहां पाकिस्तान में क्या उसके अब्बा के भी खेत हैं?

इच्छोगिल नहर के किनारे खूबसूरत ऊंचे-ऊंचे 'व्हीपिंग विलो' की नीचे लटक हुई गाझन टहनियां अपनी हथेलियों से नहर के झिलमिल पानी को छू रही हैं-उजले पानी को।

याद आ रहा है। सन् इकहत्तर में इसी नहर के दोनों ओर खड़ी दोनों देशों की सेनाओं में सीज फायर हुआ था...।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

चित्रा मुद्गल

10 दिसम्बर, 1944 को चेन्नई में जन्मी चित्रा मुद्गल की प्रारंभिक शिक्षा जिला उन्नाव (उ.प्र.) में उनके पैतृक गांव मिहाली खेड़ा लगे गांव परतीपुर में हुई। 1962 में हायर सैकेण्डरी पूना बोर्ड से। शेष पढ़ाई मुंबई विश्वविद्यालय से तथा बहुत बाद में स्नातकोत्तर पत्राचार पाठ्यक्रम से एस.एन.डी.टी. महिला विश्वविद्यालय, मुंबई से।

चित्रकला में गहरी अभिरुचि के चलते जे.जे. स्कूल ऑफ आर्ट्स से फाइन आर्ट्स का अधूरा अध्ययन। सौमैया कॉलेज में पढ़ाई के दौरान, संगठित और असंगठित क्षेत्र के श्रमिक आंदोलनों से जुड़ी। घरों में झाड़ू-पोंछा कर जीवनयापन करने वाली बाइयों के बुनियादी अधिकारों के लिए संघर्षरत संस्था की बीस वर्ष की वय में सचिव बनीं।

प्रथम कहानी 'सफेद सेनारा' नवभारत टाइम्स की कहानी प्रतियोगिता में पुरस्कृत होकर 25 अक्तूबर, 1964 में 'रविवारीय' में प्रकाशित हुई। 1980 में पहला कथा-संग्रह 'जहर ठहरा हुआ' छपा। अब तक तेरह कहानी-संग्रह प्रकाशित। 'दुलहिन', 'जिनावर', 'अपनी वापसी', 'लाक्षागृह', 'इस हमाम में', 'जगदम्बा बाबू गांव आ रहे हैं', 'लपटें' विशेष चर्चित हुए। उन्होंने लगभग सौ कहानियां लिखी हैं।

1990 में आए उनके पहले उपन्यास 'एक ज़मीन अपनी' को विज्ञापन जगत पर लिखा गया प्रथम उपन्यास मानकर सराहा गया। 2003 में दूसरे उपन्यास 'आवां' के लिए के.के. बिड़ला फाउंडेशन के तेरहवें 'व्यास सम्मान' से समादृत।

'आवां' मराठी, पंजाबी, असमियां, कन्नड़, बांग्ला में अनूदित, तेलगू, उर्दू, अंग्रेजी में अनुवाद जारी। तीसरा उपन्यास 'गिलिगडु' उर्दू, पंजाबी, मलयालम में अनूदित। इसके अलावा 'बयार उनकी मुट्ठी में' और 'विचार' (कॉलम), 'तहखानों में बंद अक्स' (कथात्मक रिपोर्ताज), 'बयान' (लघुकथाएं), 'माधवी कन्नगी', 'मणि मेखलै', 'जीवक' (तीन बाल उपन्यास), 'पेड़ पर खरगोश', 'जंगल का राज', 'नीति कथाएं', 'सूझबूझ', 'कटोरी में कटोरा', 'देश-विदेश की लोककथाएं' आदि कृतियां प्रकाशित। अंग्रेजी में 'हाइना एंड अदर स्टोरीज' और उपन्यास 'कूसेड' ('एक ज़मीन अपनी' का अनुवाद) प्रशंसित। कहानियां अनेक विश्व भाषाओं में अनूदित।

सहस्त्राब्दि के पहले अंतरराष्ट्रीय 'इन्दु शर्मा कथा सम्मान' (लंदन) से सम्मानित।

सम्प्रति : स्वतंत्र लेखन और सामाजिक कार्यों से जुड़ी हुई हैं।

ई-मेल : mail@chitramudgal.info

कोटा निवासी सुभाष केकरे देश के प्रसिद्ध चित्रकार-रेखाचित्रकार हैं। कला का निखार उनके द्वारा नियोजित कोलाजों में पूरी गरिमा के साथ उभरता है। उनके जीवंत रेखाचित्र भारत की प्रमुख हिन्दी पत्रिकाओं में प्रकाशित होते रहते हैं।

सम्पर्क : 09413941183

बोधि

मूल्य : 10.00 रुपये

बोधि पुस्तक-पर्व

आवरण कोलाज : सुभाष केकरे

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant